Is Quranic Principle Are

UNIVERSAL?

ALLAMA BARAKAT ULLAH, M.A.F.R.A.S

توضیح البیان فی اصول قرآن

علامہ برکت اللہ

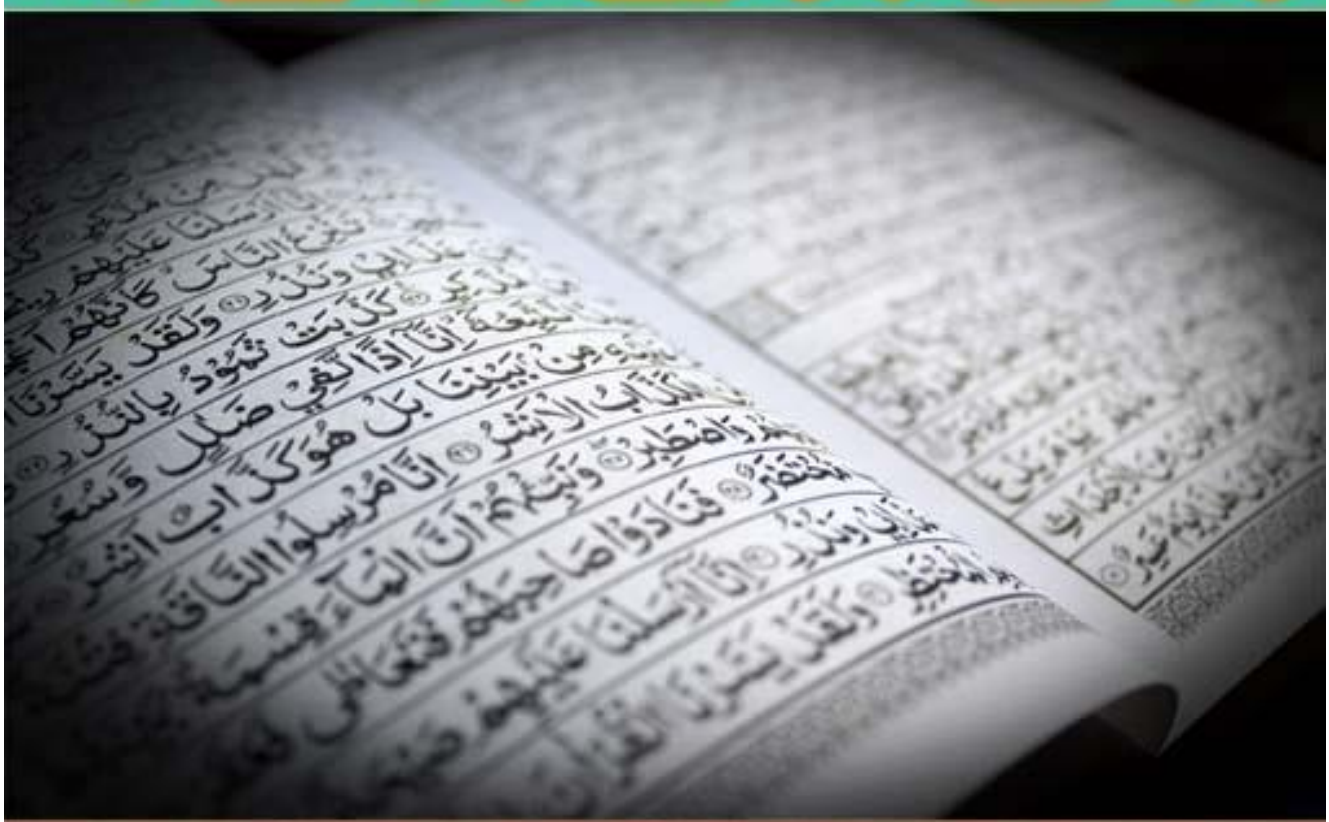

1939

www.noor-ul-huda.com

إِنَّا جَعَلْنَاهُ قُرْآنًا عَرَبِيًّا لَّعَلَّكُمْ تَعْقِلُونَ

“हमने इस को अरबी ज़बान का क़ुरआन बनाया ताकि तुम जो अहले अरब हो इस को समझो”

Indeed, We have made it an Arabic Qur'an that you might understand.

(सूरह ज़ुख़रुख आयत 2)

Is Quranic Principle Are Universal?

Allama Barkat Ullah

तौज़ीह-उल-बयान फ़ी उसूल-उल-क़ुरआन

जिसमें इस अम्र पर बहस की गई है कि आया इस्लाम के उसूल में आलमगीर होने की सलाहीयत है या नहीं

मुसन्निफ़

अल्लामा बरकत उल्ल्लाह, एम. ए. ऐम. आर. ए. ऐस.

मुसन्निफ़

मसीहीय्यत और साईंस, दश्त-ए-कर्बला या कोह कलवरी, मुहम्मद अरबी, नूर-उल-हुदा, दीने फ़ित्रत इस्लाम या मसीहीय्यत?, इस्राईल का नबी या जहान का मुनज्जी? मसीहीय्यत का आलमगीरी, सेहत कुतुबे मुक़द्दसा वग़ैरह वग़ैरह

1939 ई॰

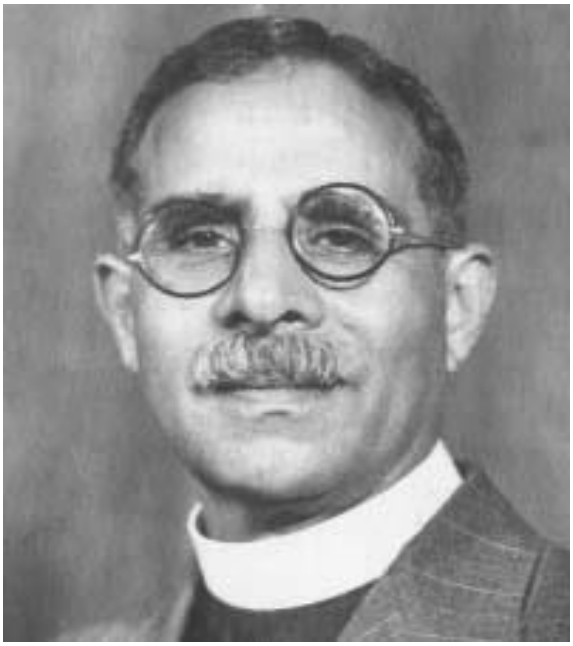

1891-1972

ALLAMA BARAKAT ULLAH, M.A.F.R.A.S

Fellow of the Royal Asiatic Socieity London

फ़ेहरिस्ते मज़मीन

दीबाचा

फ़स्ल अव्वल	हज़रत मुहम्मद सिर्फ़ क़ौम अरब के रसूल थे	15
फ़स्ल दुवम	तसव्वुर-ए-ख़ुदा	26
फ़स्ल सोइम	उसूल-ए-उखुव्वत	32
फ़स्ल चहारुम	उसूल-ए-मुसावात	56
फ़स्ल पंजुम	उसूल-ए-इबादत	80
फ़स्ल शश्म	उसूल-ए-शरीअत	94
फ़स्ल हफ़्तुम	क़ुरआन ग़ैर मुकम्मल किताब है	120

फ़ेहरिस्त मज़ामीन

दीबाचा.....7

फ़स्ल अव्वल.....15

रसूल अरबी सिर्फ़ क़ौम-ए-अरब के रसूल थे.....15

फ़स्ल दोम.....26

तसव्वुर-ए-ख़ुदा.....26

फ़स्ल सोम.....32

उसूल-ए-उखुव्वत.....32

फ़स्ल चहारुम.....56

उसूल-ए-मुसावात.....56

गुलामी और उसूल मुसावात.....57

दर्जा बंदी और उसूल-ए-मुसावात.....58

तबक़ा-ए-निसवां और उसूल-ए-मुसावात.....60

फ़स्ल पंजुम.....80

उसूल-ए-इबादत.....80

फ़स्ल शश्म.....94

उसूल-ए-शरीअत.....94

फ़स्ल हफ़्तुम.....120

क़ुरआन ग़ैर मुकम्मल किताब है.....120

अहले क़ुरआन के दआवे.....120

क़ुरआन ग़ैर-क़ुरआन का मुहताज है।.....124

हदीस क़ुरआन की कमी को पूरा नहीं कर सकती.....136

क़ुरआन बाइबल का मुहताज है.....142

दीबाचा

रसूल अरबी ने अपनी वफ़ात से कुछ मुद्दत पहले जुमाअ-उल-विदा के मौक़े पर मक्का में अहले अरब को ये पैग़ाम सुनाया था :-

أَكْمَلْتُ لَكُمْ دِينَكُمْ وَأَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِي وَرَضِيتُ لَكُمُ الإِسْلاَمَ دِينًا

“आज मैंने तुम्हारे लिए दीन को मुकम्मल कर दिया और अपनी नेअमत पूरी कर दी और तुम्हारे लिए इस्लाम को चुना।” (सूरह माइदा आयत 5)

(1)

मुनज्जी आलमीन सय्यदना ईसा मसीह ने अपनी रिसालत के इब्तिदाई अय्याम में अलल-उल-ऐलान (गवाहों के रूबरू) फ़रमाया था कि आपकी आमद का मक़्सद ये था कि बनी-आदम की नजात का काम मुकम्मल और पूरा हो। (यूहन्ना 3:16, 4:34) मस्लूब होने से एक रात पहले आपने ख़ुदा से मुख़ातब हो कर फ़रमाया कि **“बनी-आदम की नजात का काम जो तूने मुझे करने को दिया था उसको पूरा करके मैंने ज़मीन पर तेरा जलाल ज़ाहिर किया।” (यूहन्ना 17:4)** और सलीब पर से आपने दम-ए-वापसीं (नज़ाअ की हालत, आख़िरी वक़्त) अपनी ज़बान मुबारक से इर्शाद फ़रमाया कि **“पूरा हुआ और आपने जान दे दी।” (यूहन्ना 19:30)**

पस अर्ज़-ए-मुक़द्दस के कोह कलवरी से और दश्त-ए-अरब के शहर मक्का से एक ही आवाज़ बुलंद होती है कि **"पूरा हुआ"** गुज़शता तेराह (13) सदीयों से मसीहीय्यत और इस्लाम में मुतनाज़अ फिया अम्र (वो फैअल जिसमें तकरार या झगड़ा हो) यही रहा है कि कौनसा मज़्हब जामा कामिल और आलमगीर है? किस दीन के उसूल बनी-नूअ इन्सान की अक़्वाम व मलल (मज़ाहिब, अदयान, मिल्लत) की रुहानी इक़तिज़ाओं (तक़ाज़ाओं) को पूरा करते हैं? किस मज़्हब का बानी इंसान-ए-कामिल है जो कुल दुनिया की अक़्वाम के अफ़राद के लिए कामिल और अकमल नमूना हो सकता है? कौनसा मज़्हब गुम-शुदा गुनाहगार इन्सान को ये तौफ़ीक़ बख़्श सकता है कि वो अज़ सर-ए-नौ (नए सिरे से) दुनिया, नफ़्स और शैतान पर ग़ालिब आकर सिरात-ए-मुस्तक़ीम पर चल सके?

(2)

हमने अपनी किताब **"मसीहीय्यत की आलमगीरी"** (जो कि वेबसाइट पर **"आलमगीर मज़्हब"** के नाम से दस्तयाब है) में मुंदरजा बाला सवालों पर बित्तफ़सील बह्स करके साबित कर दिया है कि मसीहीय्यत के उसूल जामा और कामिल हैं, और उनमें ये सलाहीयत है कि दुनिया की हर क़ौम व मिल्लत की रहनुमाई कर सकें। हमने शख़्सियत-ए-मसीह पर मुफ़स्सिल बह्स करके

साबित किया है कि इब्ने अल्लाह दुनिया के तमाम अफ़राद के लिए एक ऐसा कामिल नमूना हैं जो बनी-नूअ इन्सान को शैतान की गुलामी से नजात देकर ये तौफ़ीक़ बख़्शते हैं कि वो ख़ुदा के फ़रज़न्दों की तरह ज़िंदगी बसर कर सकें।

हमने अपनी किताब **"दीन फ़ित्रत इस्लाम या मसीहीय्यत?"** में ये साबित किया है कि मसीही उसूल नूअ इन्सानी के फ़ित्रती मिलानात और रुहजानात को बतरज़ अहसन पूरा करते हैं। हमने इस नुक़्ता निगाह से इस्लामी और मसीही ताअलीमात का मवाज़ना इस ग़रज़ से किया है क्योंकि बाअज़ मुस्लिम उलमा इस्लाम की हक़्क़ानियत के सबूत में ये दलील पेश करते हैं कि इस्लाम दीन-ए-फ़ित्रत है लिहाज़ा वो बरहक़ है। चुनान्चे मरहूम डाक्टर नज़ीर अहमद साहब देहलवी, सर सय्यद अहमद बिलक़ाबह की पैरवी करके कहते हैं :-

> "तमाम अदयान में दीन-ए-फ़ित्रत ही दीन-ए-बरहक़ है। दीने इस्लाम वही दीने फ़ित्रत है यानी फ़ित्रत और इस्लाम नाम दो हैं मिस्दाक़ और मुसम्मा एक है।"

(उम्हात-उल-उम्मतिया सफ़ा 50)

पस हमने अपनी किताब **"दीने फ़ित्रत इस्लाम या मसीहीय्यत?"** में इस्लामी और मसीही उसूल-ए-दीन का बशरी तबीयत के नुक़्ता-ए-निगाह से

मुक़ाबला और मुवाज़ना किया है। मुंसिफ़ मिज़ाज नाज़रीन ख़ुद फ़ैसला कर लें कि हर दो मज़ाहिब में कौनसा मज़्हब दर-हक़ीक़त दीन-ए-फ़ित्रत कहलाने का मुस्तहिक़ है।

(3)

इस मुख़्तसर रिसाले में हम फ़क़त इस्लामी उसूल पर ही बह्स करने पर इक्तिफ़ा करेंगे। और इंशा-अल्लाह ये साबित करेंगे कि इस्लामी उसूल-ए-दीन बजात-ए-खुद गैर-मुकम्मल और नाक़िस हैं और आलमगीर होने की सलाहीयत नहीं रखते। हम अपने इस्तिदलाल (दलील, सबूत) की बिना क़ुरआन और सिर्फ क़ुरआन पर ही रखेंगे ताकि बिरादरान-ए-इस्लाम पर इतमाम हुज्जत (फ़ैसलाकुन बात) हो जाएगी और किसी फ़िर्क़े को मजाल (क़ुदरत) इन्कार ना रहे। क्योंकि फ़ी ज़माना में एक आम रिवाज हो गया है कि अपने नज़रियों को तक़वियत देने और इस्तिदलाल के आहनी पंजा से छुटकारा हासिल करने के लिए सक़ा (मोअतबर) रावियों को काज़िब (झूटा, दरोग़ गो) और सही हदीसों को झूटी रिवायत कह दिया जाता है। पस हमने अपने जायज़ हुक़ूक़ से दस्त बर्दारी करके बिरादरान-ए-इस्लाम को ये रिआयत दे दी है ताकि वो किताब के ख़ास मौज़ू पर ग़ौर कर सकें और उनकी तवज्जा अहादीस के सही और ग़लत होने की मबहस (बह्स, तफ़्तीश) की आज़माईश में ना पड़े।

इस रिसाले में सिर्फ इस्लामी उसूल की ग़ैर-मुकम्मल हालत पर बहस की जाएगी। इंशा-अल्लाह किसी दूसरे रिसाले में हम इस्लामी तारीख़ पर तबस्सरा करके साबित करेंगे कि इस्लामी उसूल में आलमगीर होने की सलाहीयत मुतलक़ मौजूद नहीं है क्योंकि जब कभी उनका इतलाक़ ग़ैर-अरब ममालिक पर किया गया तो तरक़्क़ी का बाब मस्दूद (बंद) हो गया।

(4)

चौथी सदी शहनशाह थियोडोसीस अव्वल (Theodosius 1) ने शहर दमिशक़ में "मुक़द्दस यूहन्ना इस्तिबाग़ी" का आलीशान गिरजा (Church Of St.John The Baptist) तामीर किया, जब अहले इस्लाम ने इस शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया तो उन्हों ने इस ख़ूबसूरत गिरजे के आधे हिस्से को मस्जिद बना लिया। इस गिरजा की बैरूनी मशरिक़ी दीवार के पत्थरों पर यूनानी हुरूफ़ में ये कुतबा कनुंदा (नक्श) था :-

"ऐ मसीह तेरी बादशाही अबदी बादशाही है और तेरी हुकूमत पुश्त दर पुश्त क़ायम रहती है।" (ज़बूर 145:14) ख़ुदा की क़ुदरत देखो ये कुतबा अरब फ़ातहीन के हाथों से महफ़ूज़ रहा। आठवीं (8) सदी के शुरू में बनी उमय्या ने गिरजा की अंदरूनी इमारत को शहीद करके उस पर एक आलीशान इमारत खड़ी कर दी जिसकी आराइश पर बारह सौ (1200) यूनानी

सनाअ (یونانی صناع) (हुनर-मंद) मामूर थे लेकिन गिरजा की बैरूनी (बाहरी) दीवार उनकी दस्त बुरद (लूट-मार) से महफ़ूज़ रह गई। ग्यारहवीं (11) सदी में इस मस्जिद को आग लग गई लेकिन ये दीवार बच गई और इस पर का कुतबा मन व अन (वैसा का वैसा ही) महफ़ूज़ रहा। ये मस्जिद दुबारा तामीर की गई लेकिन चौदहवीं (14) सदी में तैमूर की लूट के दौरान में मस्जिद को नुक़्सान पहुंचा, लेकिन दीवार का कुतबा जो का तूं (वैसा ही) क़ायम रहा। इस दीवार के क़रीब **अहले इस्लाम ने मिनार-उल-मसीह भी बनाया है और हदीस के मुताबिक़ सय्यदना ईसा मसीह की आमद सानी (दूसरी आमद) इसी मिनारे पर होगी।** पस ये कुतबा सदीयों से कलीसिया के लाज़वाल ईमान का ख़ामोश गवाह रहा है कि **"मसीह की बादशाही अबदी बादशाही है और उस की हुकूमत पुश्त दर पुश्त क़ायम रहती है।"**

जब मुसलमानों ने मसीही-दार-उल-सल्तनत क़ुस्तुनतुनिया को जिसका मौजूदा नाम इस्तंबुल है फ़त्ह किया तो वहां के आलीशान गिरजा सैंट सूफ़िया (St. Sophia Church) को मस्जिद बना दिया गया। और ज़मीन से एक सौ अस्सी (180) फुट ऊंची जगह पर जहां सलीब नसब थी हिलाल (चाँद) का निशान क़ायम कर दिया गया। मुसलमान फ़ातहीन ने गिरजा की इमारत में

मसीहीय्यत के तमाम निशानात मिटा दिए, उस के अंदर क़ुरआनी आयात लिखी गईं, इस्लामी मिंबर खड़ा कर दिया गया।

और एक ताक़ क़िब्ला रू बनाई गई ताकि नमाज़ के वक़्त उस जानिब नमाज़ी मुँह फेर सकें। गिरजा के मशरिक़ी कोने में रंग बिरंग क़ीमती शीशों और चमकदार पत्थरों के नक़्श व निगार से मुनज्जी आलमीन सय्यदना मसीह की शबिया मुबारक बनी थी जिसमें आप अपने हाथों को फैलाकर तमाम दुनिया को बरकत दे रहे थे। तुर्कों ने इस तस्वीर पर नक़्शीन बेल-बूटे बनाकर उस को छुपा दिया। इमत्तीदाद-ए-ज़माने (मुद्दत दराज़) से वो बेल-बूटे मिट गए और अब मुनज्जी आलमीन की मुबारक शबिया धुँदली तौर पर नज़र आने लगी है और आप इस मस्जिद से अपने हाथ फैला कर तमाम दुनिया को बरकत दे रहे हैं।

पाँच (5) साल का अरसा हुआ जब इसी मस्जिद के शाही दरवाज़े को साफ़ किया गया तो सय्यदना मसीह की एक और तस्वीर पच्चीकारी (जवाहर और रंगदार पत्थरों का काम) और जड़ाऊ काम की निकली। इस तस्वीर में हमारे ख़ुदावंद एक मुरस्सा (आरास्ता) तख़्त पर बैठे हैं। आपके हाथ में एक किताब खुली है जिस पर लिखा है :-

“अस्सलामु अलैकुम मैं दुनिया का नूर हूँ।”

(Manchester Guardian Weekly March 16 1934, p213)

ये तस्वीरें और कुतबे हमको याद दिलाते हैं कि गो तारीख़ दुनिया में बसा-औक़ात ऐसा मालूम होता है कि मुख़ालिफ़ ताक़तों ने मसीहीय्यत के आफ़्ताब-ए-सदाक़त को छुपा दिया है ताहम बिल-आखिर उस की रोशनी हर क़िस्म की तारीकी पर ग़ालिब आती है। **"कलिमतुल्लाह (کلمۃاللہ) में ज़िंदगी है और वो ज़िंदगी आदमीयों का नूर है नूर तारीकी में चमकता है और तारीकी उस पर ग़ालिब नहीं आ सकती।" (यूहन्ना 1:4-5)** सुल्तान-उल-सलातीन मसीह अज़ल से अबद तक तख़्त नशीन है, उस की बादशाही अबदी बादशाही है, उस की हुकूमत पुश्त दर पुश्त क़ायम रहती है, वो तमाम ममालिक व अक़वाम को अपनी आग़ोश मुहब्बत में लेकर बरकत देता है और कुल बनी-नूअ इन्सान को बरकत देकर फ़रमाता है कि **"अस्सलामु अलैकुम दुनिया का नूर मैं हूँ जो मेरी पैरवी करेगा अंधेरे में ना चलेगा बल्कि ज़िंदगी का नूर पाएगा।" (यूहन्ना 8:12)**

होली ट्रिनिटी चर्च, लाहौर

अक्तूबर 1939 ई॰

बरकतुल्लाह

फ़स्ल अव़्वल

रसूल अरबी सिर्फ़ क़ौम-ए-अरब के रसूल थे

हमने अपने रिसाले **"इस्राईल का नबी या जहान का मुनज्जी?"** में ये साबित कर दिया है कि सय्यदना मसीह ने अपनी रिसालत को यहूदी क़ौम तक ही महदूद नहीं फ़रमाया था बल्कि आपको ये एहसास था कि आपके पैग़ाम के उसूल तमाम दुनिया की अक़्वाम के लिए हैं। इस के बरअक्स इस्लाम एक ख़ास क़ौम और मुल्क यानी अरब से मख़्सूस है। इस का दस्तूर-उल-अमल सिर्फ उन अरबों के लिए था जो तेराह सौ (1300) साल हुए मुल्क अरब में बस्ते थे। हज़रत मुहम्मद भी सिर्फ अरब ही के रसूल थे और आप की बिअसत (भेजने) का मक़्सद यही था कि अपने हम-अस्र (अपने ज़माने के) अहले अरब को ही राह हिदायत पर लाएं। चुनान्चे क़ुरआन में अल्लाह फ़रमाता है :-

وَاَنْذِرْ عَشِيْرَتَكَ الْاَقْرَبِيْنَ

"ऐ मुहम्मद तू अपने क़रीबी रिश्तेदारों को डरा और उनको ख़ुदा की तरफ़ फेर ला।" (शूअरा आयत 214)

وَكَذٰلِكَ اَوْحَيْنَآ اِلَيْكَ قُرْاٰنًا عَرَبِيًّا لِّتُنْذِرَ اُمَّ الْقُرٰى وَمَنْ حَوْلَهَا

“हमने (ऐ मुहम्मद) तुझ पर अरबी ज़बान में क़ुरआन नाज़िल किया ताकि तू बड़ी बस्ती (मक्का) और उस के आस-पास वालों को डराए।” (शूरा आयत 7)

وَهٰذَا كِتٰبٌ اَنْزَلْنٰهُ مُبٰرَكٌ مُّصَدِّقُ الَّذِیْ بَیْنَ یَدَیْهِ وَلِتُنْذِرَ اُمَّ الْقُرٰی وَمَنْ حَوْلَهَا وَ الَّذِیْنَ یُؤْمِنُوْنَ بِالْاٰخِرَةِ یُؤْمِنُوْنَ بِهٖ وَهُمْ عَلٰی صَلَاتِهِمْ یُحَافِظُوْنَ

“ये किताब जो हमने नाज़िल की है, बरकत वाली है और पहली किताबों की मुसद्दिक़ इसलिए है कि इस शहर मक्का और उस के नवाही (आस-पास) को डराए।”….अलीख (अनआम आयत 92)

रसूल अरबी अहले अरब की ख़ातिर इस वास्ते मबऊस हुए थे कि उन मआरिफ़ (मारफ़्ता معرفۃ की जमा, उलूम व फ़नून, शानासाइयाँ) हक़ायक़ और उसूल को जो इब्रानी और यूनानी कुतुब मुक़द्दसा में थे “फ़सीह अरबी ज़बान” में अरबों को बता दें और इस तरह उनको आलमगीर मज़्हब यानी मसीहीय्यत की ताअलीम और उसूल से वाक़िफ़ करा दें क्योंकि उस की कुतुब मुक़द्दसा “हिदायत” “नूर” और **(علی الذی احسن وتفصیلاً کل شئی)** “अलल-लज़ी अहसन व तफ़सीलन कुल्ली शेई” थीं, लेकिन अरब इन कुतुब की ज़बानों से ना-आश्ना थे और कहते थे कि :-

اَنْ تَقُوْلُوْٓا اِنَّمَآ اُنْزِلَ الْكِتٰبُ عَلٰی طَآئِفَتَیْنِ مِنْ قَبْلِنَا ۪ وَ اِنْ كُنَّا عَنْ دِرَاسَتِهِمْ لَغٰفِلِیْنَ

"अल्लाह की किताब यहूद और नसारा दो ही फ़िर्क़ों पर उतरी है और हम तो इस को पढ़ नहीं सकते।" (अनआम आयत 156)

आँहज़रत ने उनका ये उज़्र (बहाना) रफ़ाअ (दूर) कर दिया और इब्रानी और यूनानी कुतुब मुक़द्दसा का मफ़्हूम अरबी ज़बान में अदा करके अरब पर इतमाम-ए-हुज्जत (फैसला कुन हुज्जत) कर दी चुनान्चे क़ुरआन में अल्लाह फ़रमाता है :-

اِنَّا جَعَلْنٰهُ قُرْءٰنًا عَرَبِيًّا لَّعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ

"हमने इस अरबी क़ुरआन को बनाया ताकि ऐ अरब तुम उसे समझो।" (ज़ुख़रुख आयत 3)

اَوْ تَقُوْلُوْا لَوْ اَنَّآ اُنْزِلَ عَلَيْنَا الْكِتٰبُ لَكُنَّآ اَهْدٰى مِنْهُمْ ۚ فَقَدْ جَآءَكُمْ بَيِّنَةٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَهُدًى وَّرَحْمَةٌ ۚ فَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ كَذَّبَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَصَدَفَ عَنْهَا ۭ سَنَجْزِي الَّذِيْنَ يَصْدِفُوْنَ عَنْ اٰيٰتِنَا سُوْۗءَ الْعَذَابِ بِمَا كَانُوْا يَصْدِفُوْنَ

"अब तो तुम्हारे रब की तरफ़ से तुमको हुज्जत और हिदायत और रहमत आ गई फिर उस शख़्स से कौन ज़्यादा ज़ालिम है जो अल्लाह की आयतों से रुगिरदानी करे। हम रुगिरदानी करने वाले को सज़ा देंगे।" (अल-अन्आम आयत 157)

وَاِنَّهٗ لَتَنْزِيْلُ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ (۱۹۲) نَزَلَ بِهِ الرُّوْحُ الْاَمِيْنُ (۱۹۳) عَلٰي قَلْبِكَ لِتَكُوْنَ مِنَ الْمُنْذِرِيْنَ (۱۹۴) بِلِسَانٍ عَرَبِيٍّ مُّبِيْنٍ (۱۹۵)

"ऐ पैग़म्बर कुछ शक नहीं कि ये क़ुरआन परवरदिगार आलम का उतारा हुआ है जिसको जिब्रील अमीन ने हमारे हुक्म से सलीस अरबी ज़बान में

तुम्हारे दिल पर इलक़ा किया है ताकि और पैग़म्बरों की तरह तुम भी लोगों को अज़ाब-ए-ख़ुदा से डराओ।" (शोअरा आयत 192-195)

हज़रत मुहम्मद अहले अरब को कहते थे कि जिस तरह अहले यहूद के अम्बिया मुर्सल मिनल्लाह (انبیاء مرسل من اللہ) थे और उनकी कुतुब बरहक़ हैं इसी तरह मैं भी अल्लाह की जानिब से अरब की तरफ़ रसूल हो कर भेजा गया हूँ और मेरा क़ुरआन भी सच्चा है क्योंकि इस में वही अहकाम हैं जो यहूद व नसारा की कुतुब में हैं।

وَ مَا كَانَ هٰذَا الْقُرْاٰنُ اَنْ يُّفْتَرٰى مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَ لٰكِنْ تَصْدِيْقَ الَّذِىْ بَيْنَ يَدَيْهِ وَ تَفْصِيْلَ الْكِتٰبِ لَا رَيْبَ فِيْهِ مِنْ رَّبِّ الْعٰلَمِيْنَ

"ये क़ुरआन ऐसा नहीं जिसको अल्लाह के सिवा कोई और घड़े, वो कुतुब साबिक़ा की तस्दीक़ करता है और बाइबल की तफ़्सील है जिसकी निस्बत कोई शक नहीं कि वो परवरदिगार आलम की तरफ़ से है।"

(यूनुस आयत 37, नीज़ देखो ताहा रुकू 8, शूअरा रुकू 11, बक़र रुकू 26, हदीद रुकू 11, यूसुफ़ रुकू 12, बक़र रुकू 12, अनआम रुकू 11, रुकू 19, माइदा रुकू 7, रुकू 9, रुकू 10, निसा रुकू 7, बक़र रुकू 5, रुकू 11, मोमिन रुकू 6 वग़ैरह।)

आँहज़रत ने कुफ्फार को कहा कि तुम्हारे दिलों में यहूद व नसारा की कुतुब का वक़ार है पस क़ुरआन को भी मान लो क्योंकि :-

وَاِنَّهٗ لَفِیۡ زُبُرِ الۡاَوَّلِیۡنَ اَوَلَمۡ یَکُنۡ لَّهُمۡ اٰیَةً اَنۡ یَّعۡلَمَهٗ عُلَمٰٓؤُا بَنِیۡۤ اِسۡرَآءِیۡلَ

"ये क़ुरआन अगले पैग़म्बरों की किताबों में मौजूद है क्या अहले मक्का के लिए (इस की सदाक़त की दलील) ये काफ़ी नहीं कि इस क़ुरआन (के मज़ामीन) से उलमा बनी-इस्राईल वाक़िफ़ हैं।" (शोअरा आयत 196 ता 197)

पस मुंदरजा बाला आयात से ज़ाहिर है कि आँहज़रत का पैग़ाम अहले अरब तक महदूद था। आपकी दिली-ख़्वाहिश थी कि जिस तरह अहले यहूद व नसारा शिर्क और बुत-परस्ती को तर्क करके इब्राहिम ख़लील-उल्लाह के मज़्हब की पैरौ (मानने वाले) हैं इसी तरह आपके हम-अस्र (उनके ज़माने के) कुफ़्फ़ार अरब भी बुत-परस्ती और शिर्क से मुँह मोड़ कर ख़ुदा की तौहीद पर ईमान लाएं। चुनान्चे आपने अपनी वफ़ात से कुछ अरसा पहले अहले अरब को ये आयत सुनाई :-

اَلۡیَوۡمَ اَکۡمَلۡتُ لَکُمۡ دِیۡنَکُمۡ وَ اَتۡمَمۡتُ عَلَیۡکُمۡ نِعۡمَتِیۡ وَ رَضِیۡتُ لَکُمُ الۡاِسۡلَامَ دِیۡنًا

"ऐ अहले अरब ! ख़ुदा फ़रमाता है आज मैंने तुम्हारे लिए दीन को मुकम्मल कर दिया और अपनी नेअमत तुम पर पूरी कर दी और (ऐ अरब के लोगो मैंने तुम्हारे लिए इस्लाम को चुना।" (मायदा आयत 3)

मुम्किन है कि कोई शख़्स ये कहे कि आँहज़रत ने फ़रमाया था कि आपका दीन सब पर ग़ालिब रहेगा, पस आँहज़रत के ख़्याल में इस्लाम सिर्फ अरब के लिए ही ना था।

लेकिन इस क़ौल से आँहज़रत का मतलब ये नहीं था कि इस्लाम अक़्वाम-ए-आलम का मज़्हब होगा बल्कि आपका मतलब ये था कि अरब में इस्लाम सियासी तौर पर ग़ालिब रहेगा और गो मुल्क-ए-अरब में कुफ़्फ़ार और यहूद और नसारा के मज़ाहिब होंगे लेकिन मुसलमान सब पर हुकूमत करेंगे। यही वजह है कि कुफ़्फ़ार की निस्बत अल्लाह तआला ने ये हिदायत दी कि :-

قُلۡ یٰۤاَیُّہَا الۡکٰفِرُوۡنَ ۙ﴿۱﴾ لَاۤ اَعۡبُدُ مَا تَعۡبُدُوۡنَ ۙ﴿۲﴾ وَ لَاۤ اَنۡتُمۡ عٰبِدُوۡنَ مَاۤ اَعۡبُدُ ۚ﴿۳﴾ وَ لَاۤ اَنَا عَابِدٌ مَّا عَبَدۡتُّمۡ ۙ﴿۴﴾ وَ لَاۤ اَنۡتُمۡ عٰبِدُوۡنَ مَاۤ اَعۡبُدُ ﴿۵﴾ لَکُمۡ دِیۡنُکُمۡ وَلِیَ دِیۡنِ ﴿۶﴾

“(ऐ मुहम्मद) तू कह दे कि, ऐ काफिरो मैं उन चीज़ों की हरगिज़ परस्तिश (इबादत) ना करूँगा जिनकी तुम परस्तिश करते हो और जिसकी मैं परस्तिश करता हूँ तुम उस की परस्तिश करने के नहीं। पस तुम्हारे वास्ते तुम्हारा दीन और मेरे वास्ते मेरा दीन है।” (सूरह अल-काफिरून आयत 1-6)

और यहूद की निस्बत क़ुरआन में ख़ुदा कहता है :-

وَ کَیۡفَ یُحَکِّمُوۡنَکَ وَ عِنۡدَہُمُ التَّوۡرٰىۃُ فِیۡہَا حُکۡمُ اللّٰہِ ثُمَّ یَتَوَلَّوۡنَ مِنۡۢ بَعۡدِ ذٰلِکَ ؕ وَ مَاۤ اُولٰٓئِکَ بِالۡمُؤۡمِنِیۡنَ ﴿۴۳﴾ اِنَّاۤ اَنۡزَلۡنَا التَّوۡرٰىۃَ فِیۡہَا ہُدًی وَّ نُوۡرٌ ۚ یَحۡکُمُ بِہَا النَّبِیُّوۡنَ الَّذِیۡنَ اَسۡلَمُوۡا لِلَّذِیۡنَ ہَادُوۡا وَ الرَّبّٰنِیُّوۡنَ وَ الۡاَحۡبَارُ بِمَا اسۡتُحۡفِظُوۡا مِنۡ کِتٰبِ اللّٰہِ وَ کَانُوۡا عَلَیۡہِ شُہَدَآءَ

“ये लोग क्यों तुम्हारे पास झगड़े फ़ैसले को लाते हैं जब कि ख़ुद उनके पास तौरेत है और उस में हुक्म-ए-ख़ुदा मौजूद है। बेशक हम ही ने तौरेत

नाज़िल की जिसमें हर तरह की हिदायत और नूर ईमान है। ख़ुदा के फ़रमांबर्दार अम्बिया बनी-इस्राईल इसी के मुताबिक़ हुक्म देते चले आए हैं।" अलीख (सूरह अल-मायदा आयत 43-44 तर्जुमा नज़ीर अहमद)

फिर इसी के आगे नसारा को (अल्लाह) कहता है कि वो भी इंजील पर चलें :-

وَ قَفَّيْنَا عَلٰٓى اٰثَارِهِمْ بِعِيْسَى ابْنِ مَرْيَمَ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ التَّوْرٰىةِ ۖ وَ اٰتَيْنٰهُ الْاِنْجِيْلَ فِيْهِ هُدًى وَّ نُوْرٌ ۙ وَّ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ التَّوْرٰىةِ وَ هُدًى وَّ مَوْعِظَةً لِّلْمُتَّقِيْنَ (۴۶) وَلْيَحْكُمْ اَهْلُ الْاِنْجِيْلِ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فِيْهِ ۭ وَ مَنْ لَّمْ يَحْكُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰۗىِٕكَ هُمُ الْفٰسِقُوْنَ (۴۷)

"इन ही बनी-इस्राईल के अम्बिया के क़दम-बा-क़दम हमने ईसा बिन मर्यम को तौरेत का मुसद्दिक़ बना कर भेजा और हम ने उस को इंजील दी जो हिदायत और नूर है और परहेज़गारों के लिए हिदायत और नसीहत है। और चाहिए कि अहले इंजील उस के मुवाफ़िक़ जो अल्लाह ने इंजील में नाज़िल किया है, हुक्म दिया करें और जो कोई ख़ुदा के इन नाज़िल किए हुए हुक्मों के मुताबिक़ हुक्म ना दे तो वो फ़ासिक़ है।" (सूरह अल-मायदा आयत 46-47)

पस रसूल अरबी का हक़ीक़ी मंशा यही था कि मुल्क अरब में कुफ़्फ़ार और यहूद व नसारा के साथ साथ मुसलमान भी बसें लेकिन मुसलमान हाकिम हो कर रहें और दीगर महकूम की हालत में ज़लील हो कर रहें और जज़्या दें।

قَاتِلُوا الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَلَا بِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَلَا يُحَرِّمُوْنَ مَا حَرَّمَ اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗ وَ لَا يَدِيْنُوْنَ دِيْنَ الْحَقِّ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ حَتّٰى يُعْطُوا الْجِزْيَةَ عَنْ يَّدٍ وَّهُمْ صٰغِرُوْنَ (۲۹)

“जो लोग अहले-किताब में से ख़ुदा पर ईमान नहीं लाते और ना रोज़ आख़िरत पर (यक़ीन रखते) हैं और ना उन चीज़ों को हराम समझते हैं जो ख़ुदा और उस के रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने हराम की हैं और ना दीन हक़ को क़ुबूल करते हैं उनसे जंग करो, यहां तक कि ज़लील हो कर अपने हाथ से जज़्या दें।” (सूरह तौबा आयत 29)

मशहूर फ़ाज़िल मुस्तश्रिक़ एफ़ बेहल (F.Buhl.) ने इस सवाल पर 1926 ई॰ के “इस्लामिका जिल्द 2 (Islamic 1926 Vol 2) में मुख़्तलिफ़ पहलूओं से बहस की है और वो इस नतीजे पर पहुंचा है कि इब्तिदा में इस्लाम का हरगिज़ मंशा ना था कि ग़ैर अरब को अपना हल्क़ा-ब-गोश करे। एक और फ़ाज़िल मुस्तश्रिक़ लेवी का ख़्याल है[1] कि वो ख़ुतूत जिनकी निस्बत ये दावा किया जाता है कि आँहज़रत ने उनको अय्यामे मदीना में मुख़्तलिफ़ ममालिक के रूउसा (उमरा) के पास भेजा था माबाअ्द की नसलों ने वज़अ किए हैं। इस के ख़्याल में अगर हम तमाम शहादतों को मद्दे-नज़र रखें तो ये मालूम हो जाएगा कि रसूल अरबी के दिल में बिअसत की इब्तिदा में मक्की अय्याम में एक आलमगीर मज़्हब की बुनियाद डालने का ख़्याल कभी ना आया था आपका वाहिद मक़्सद ये था कि आप अपने हम वतनों को ये यक़ीन दिलाएँ कि आप ख़ुदा की तरफ़ से फ़िरिस्तादा (एलची, क़ासिद रसूल) बरहक़ थे।

[1] Sociology of Islam by Reuben Levy. Vol 11

मदनी अय्याम में भी रसूल की हमेशा यही ख़्वाहिश रही कि किसी ना किसी तरह मक्का को जो अरब का रुहानी मर्कज़ था, फ़त्ह किया जाये और अगरचे आपकी हीने-हयात (जीते जी) में और आपकी वफ़ात के बाद दीगर शहर इस्लाम के क़ब्ज़े में आए ताहम मक्का इब्तिदा से आज तक इस्लाम का रुहानी मर्कज़ चला आया है। शहर मक्का ग़ैर अरब की नज़र में कोई ख़ास वक़अत ना रखता था, लेकिन इस का इस्लाम का रुहानी मर्कज़ होना इस बात की दलील है कि इस्लाम मक्का और अरब के क़बाइल के लिए था। रसूल अरबी ने मदनी अय्याम में मक्का के ख़ाना काअबा को यरूशलम की बजाय क़िब्ला मुक़र्रर क्या इस से भी ज़ाहिर है कि आपके ख़्याल में आपका मिशन अरब और सिर्फ अरब तक ही महदूद था।

पस जिस तरह दीगर पैग़म्बर अपनी अपनी क़ौम के लिए मबऊस हुए थे उसी तरह आँहज़रत भी क़ौम अरब की तरफ़ भेजे गए थे ताकि अरबी ज़बान में कलाम करने के मुशरिकीन और बुतपरस्त कुफ़्फ़ार पर इतमाम-ए-हुज्जत (फैसला कुन हुज्जत) करें जो कहते थे कि हम ग़ैर अरबी ज़बानों से नावाक़िफ़ हैं हमको वहदत ईलाही का पैग़ाम किसी ने नहीं सुनाया अगर ख़ुदा-ए-वाहिद को ये मंज़ूर होता कि हम भी मिस्ल दीगर अक़्वाम यहूद व नसारा किसी वाहिद ख़ुदा को मानते तो वो हमारी क़ौम की तरफ़ भी किसी को रसूल बना कर भेजता जो हमारी अपनी ज़बान में हमको पैग़ाम देता। पस आँहज़रत

के सही मुख़ातब अरब और अहले अरब ही थे आप क़ौम अरब की ख़ातिर मबऊस हुए थे और आपका पैग़ाम और रिसालत उम्मुल-क़ुरा मक्का (اُم القریٰ مکہ) और इस की नवाही (आसपास) तक ही महदूद था। ग़रज़ ये कि आप हर पहलू और हर नुक़्ता-ए-नज़र से रसूल अरबी थे। यही वजह है कि आँहज़रत की निस्बत कहा जाता है, ع :-

मर्हबा सय्यद-ए-मक्की मदनी वल अरबी

مرحبا سیدِ مکی مدنی والعربی

आँहज़रत की वफ़ात के बाद हज़रत उमर के ज़माने में इस्लाम ग़ैर अरब ममालिक में फैलने लगा लेकिन अस्लाफ़ (सलफ़ की जमा बुज़ुर्ग) का ये ख़्याल कि मुसलमान फ़ातहीन महज़ इस्लाम और क़ुरआन को फैलाने की ख़ातिर ग़ैर ममालिक पर फ़ौजकशी करते थे ग़लत है। रसूल अरबी की वफ़ात के बाद मुनाफ़क़ीन और मुर्तदीन का गिरोह कसीर, सहाबा रसूल और अहले बैत की अंदरूनी कश्मकश, क़ुरैश और ग़ैर क़ुरैश की रक़ाबत, जंग जमल और वाक़िया कर्बला वग़ैरह इस बात को साबित करते हैं कि दर-हक़ीक़त इस्लाम का दर्द सिर्फ़ मादूद-ए-चंद लोगों के दिलों में था, जो नबी अरब की शख़्सियत से मुतास्सिर हो चुके थे। बाक़ी अरब इस्लाम की बाबत बहुत कुछ जानते थे और ना पर्वा करते थे। जो शैय अरब को उनके सहराई जज़ीरानुमा से बाहर

निकाल लाई वो इस्लाम का पास ना था बल्कि उनकी इक़तिसादी हालत और उनकी भूक और प्यास थी।

इलावा अज़ीं मुसलमान फ़ातहीन की सबसे ज़बरदस्त फ़ुतूहात मुल्क-ए-शाम में वाक़ेअ हुईं जो ख़ुलफ़ा-ए-बनी उमय्या का हसीन (फ़सील नुमा) क़िला था। इन फ़ुतूहात का असली सबब मसीही फ़िर्क़ों की बाहमी पर्ख़ाश (झगड़ा, फ़साद) था। जिसकी वजह से सल्तनत-ए-रूम (क़ुस्तुनतुनिया) की मसीही अफ़्वाज ने अपने हम-राही अफ़्वाज से ग़द्दारी इख़्तियार करके उनका साथ छोड़ दिया। अगर ये गद्दाराना रवैय्या इख़्तियार ना किया जाता तो इस्लामी तारीख़ के औराक़ किसी और तरह लिखे जाते और इस्लाम जज़ीरा नुमाए अरब तक ही महदूद रहता जैसा उस के बानी का मक़्सद और मंशा था।

फ़स्ल दोम

तसव्वुर-ए-ख़ुदा

आलमगीर मज़्हब की लाज़िमी शर्त ये है कि उस के उसूल दुनिया के कुल ममालिक और अक़्वाम पर हावी हो सकें और उस का पैग़ाम ये अहलीयत (क़ाबिलियत) रखता हो कि ज़मान व मकान की क़ुयूद (क़ैद की जमा, बंदिश) से आज़ाद हो और किसी ख़ास क़ौम या ज़बान या मुल्क से मुताल्लिक़ ना हो ताकि हर क़ौम और मुल्क और ज़माने के अफ़राद (लोग) अपने ख़ास हालात पर इस का इतलाक़ करके उस की तामील कर सकें।

(1)

हमने अपनी किताब **<u>"मसीहीय्यत की आलमगीरी"</u>** के बाब दोम में ये साबित किया है कि मसीहीय्यत की ताअलीम की असास (बुनियाद) ख़ुदा की मुहब्बत और अब्बुवत (ابوت) और इन्सानी उख़ुव्वत और मुसावात (बराबरी) हैं। इस हक़ीक़त से किसी साहिब-ए-अक़्ल को इन्कार की मजाल नहीं। चुनान्चे मरहूम सय्यद अमीर अली साहब (जिनसे बढ़कर इस ज़माना में कोई दूसरा हामी इस्लाम नहीं गुज़रा) इस हक़ीक़त का एतराफ़ ब-ईं अल्फ़ाज़ करते हैं :-

"ख़ुदा की अब्बुवत (बाप होने) का जो तसव्वुर जनाब-ए-मसीह का था उस में कुल बनी-आदम शामिल हैं। हर इन्सान ख़ुदा का फ़र्ज़ंद है और आप अज़ली बाप की तरफ़ से तमाम इन्सानों के हादी हो कर आए थे।"[2]

(2)

ये ज़ाहिर है कि मसीहीय्यत के ये उसूल आला तरीन हैं और ज़मान व मकान की क़ुयूद से आज़ाद हैं लिहाज़ा हर ज़माने में हर मुल्क और क़ौम के अफ़राद इन पर अमल कर सकते हैं लेकिन ये आलमगीर उसूल इस्लाम में काल-नादिर फ़ील-माअदूम (کالنادر فی العدوم) का हुक्म रखते हैं। **<u>इस्लाम में ख़ुदा के निनान्वें (99) नाम हैं लेकिन इन निनान्वें (99) नामों में "अब" (اب) यानी बाप का नाम मौजूद नहीं और ना इस लफ़्ज़ का लतीफ़ और पाकीज़ा मफ़्हूम किसी और नाम से क़ुरआन में मौजूद है।</u>** ख़ुदा के तसव्वुर "अब" (बाप) या "रब" एक दूसरे से जुदा हैं। पहला तसव्वुर कलिमतुल्लाह (کلمۃ اللہ) का है। दूसरा तसव्वुर इस्लामी तसव्वुर है, जो इस्लाम की तबीयत, उसूल और शेवा का मज़हर है। यही तसव्वुर इस्लाम के आलमगीर मज़्हब होने के मानेअ (मना करने वाला) है। रब का तसव्वुर इस्लाम की रूह रवाँ है, और आँहज़रत ने दीदा दानिस्ता (जानबूझ कर) उस को "बाप" के तसव्वुर की बजाय क़ायम

2 Spirit of Islam .p.232

किया ताकि ख़ुदा के "बाप" होने का तसव्वुर लोगों के दिलों से निकल जाये। चुनान्चे अबू दाऊद किताब-उल-तिब्ब में लिखा[3] है हज़रत ने फ़रमाया कि :-

> "अगर कोई बीमार हो तो वो ये दुआ पढ़े, ऐ हमारे रब जो आस्मान पर है तेरा नाम पाक माना जाये, तेरी क़ुव्वत आस्मान और ज़मीन पर है। जिस तरह आस्मान पर तेरा रहम है उसी तरह ज़मीन पर भी हो हमारे क़ुसूरों और गुनाहों को माफ़ कर कि तू नेक लोगों का मौला है और अपने रहम से हम पर रहम नाज़िल कर।"[4]

जो लोग जनाब-ए-मसीह की दुआ **(मत्ती 6:9-13)** से वाक़िफ़ हैं वो देख सकते हैं कि वो मज़्कूर बाला दुआ में ख़ुदा की निस्बत लफ़्ज़ **"बाप"** की बजाय लफ़्ज़ **"रब"** दीदा दानिस्ता (जानबूझ कर) इस्तिमाल किया गया है। इस्लाम का अल्लाह तआला ही अल-क़य्यूम, क़ादिर-ए-मुतलक़, क़हहार और जब्बार है। उस का और ख़ल्क़ का बाहमी (आपस में) ताल्लुक़ ख़ुद-मुख़्तार सुल्तान और रईयत, आक़ा और ग़ुलाम का ताल्लुक़ है। ख़ुदा और उस की मख़्लूक़ में बाप और बेटे का ताल्लुक़ नहीं। अगर अल्लाह मेहरबान ग़फ़्फ़ार और अल-रहमान अल-रहीम है तो अपनी पिदराना शफ़क़त और अज़ली मुहब्बत की वजह से नहीं बल्कि ख़ुसरवाना (बादशाही, शाहाना) इनायत की वजह से है। अगर आक़ा

3 Browne's Eclipse of Christianity in Asia . ch:7

4 अबू दाऊद हदीस नंबर 3892

चाहे तो अपने ग़ुलाम को माफ़ करे अगर चाहे तो सज़ा दे। सब कुछ अल्लाह की मुतलक़-उल-अनान मर्ज़ी पर मौक़ूफ़ है जिसको चाहे माफ़ करे जिसको चाहे अज़ाब दे। (बक़रह आयत 284, आले-इमरान 25 व 35, माइदा आयत 44)

पस क़ुरआन का अल्लाह एक क़ादिर-ए-मुतलक़ सुल्तान है जो एक ज़िम्मेवार हस्ती नहीं बल्कि :-

إِنَّ اللَّهَ يَحْكُمُ مَا يُرِيدُ

"अल्लाह जो चाहे हुक्म दे।" (माइदा आयत 1)

लिहाज़ा क़ुर्बानीयों के वसीले से उस को ख़ुश करने की कोशिश की जाती है। लेकिन मसीहीय्यत का ख़ुदा मुहब्बत का ख़ुदा है। "वो गुनेहगारों की मौत नहीं चाहता" बल्कि ये चाहता है कि गुनाहगार उस की जानिब रुजू करे। जिस तरह दुनियावी बाप की मुहब्बत और दुनियावी माँ की ममता इस बात की मुतक़ाज़ी (तक़ाज़ा करती) है कि उनका नाफ़र्मान बेटा उनकी जानिब रुजू करे और इस बात के लिए वो हर मुम्किन कोशिश करते हैं इसी तरह ख़ुदा की मुहब्बत इस बात की मुतक़ाज़ी (तक़ाज़ा करती) है कि वो हर मुम्किन तौर से गुनाहगारों को अपनी जानिब लाए (यूहन्ना 3:16, मत्ती 18:14, मरक़ुस 2:17 वग़ैरह)

<u>चूँकि इस्लाम का अल्लाह मुहब्बत नहीं लिहाज़ा उस में मुहब्बत का कफ़्फ़ारा नहीं, हाँ क़ुर्बानी, सदक़ा, ज़कात वग़ैरह है। जिसको पूरा करने से एक क़हहार और जब्बार हस्ती को ख़ुश करने की कोशिश की जाती है।</u>

लेकिन इंजील जलील की ये ताअलीम है कि ख़ुदा की ज़ात मुहब्बत है (1_यूहन्ना 4:8)

क़ुरआन में ख़ुदा मुहब्बत होने के बजाय बेनियाज़ है (इख़्लास आयत 2) वो "बेपरवाह" है। (अनआम 133, ममतहना 6 वग़ैरह) मुहब्बत और बेपरवाई एक दूसरे के कुल्लियतन मतनाकज़ (बिल्कुल उलट) हैं। जहां मुहब्बत है, वहां बेपरवाई नहीं हो सकती और जहां बेपरवाई है वहां मुहब्बत का निशान तक नहीं होता।

हमने इस्लामी तसव्वुर-ए-ख़ुदा पर अपनी किताब **<u>"दीन-ए-फ़ित्रत, इस्लाम या मसीहीय्यत?"</u>** की फ़स्ल दोम में मुफ़स्सिल बहस की है। नाज़रीन से दरख़्वास्त है कि वो इस मज़्मून पर ग़ौर करके मुंसिफ़ाना नज़र से ख़ुद फ़ैसला करें कि मसीहीय्यत के मुक़ाबले में इस्लामी तसव्वुर-ए-ख़ुदा ग़ैर-मुकम्मल और नाक़िस है या नहीं। इंजील जलील में ख़ुदा की मुहब्बत का बेहतरीन तसव्वुर बतरज़ अहसन मौजूद है। आँजहानी ख़्वाला कमाल उद्दीन क़ादियानी तक को इस बात का इक़बाल है। चुनान्चे वो लिखते हैं कि :-

> “मैं इस अम्र को तस्लीम करता हूँ कि जनाब-ए-मसीह मज़्हब-ए-मुहब्बत को ही दुनिया में लाए।” (यनाबीअ सफ़ा 114)

इस्लामी सिफ़ात वाला ख़ुदा दौर-ए-हाज़रा की परस्तिश के लायक़ नहीं हो सकता क्योंकि वो महज़ एक मुतलक़-उल-अनान बादशाह है, जिसकी क़ुदरत उस की ताक़त के मुज़ाहरे पर ही मुश्तमिल है, लेकिन हम इस क़िस्म के तसव्वुरात से बहुत दूर निकल गए हैं। दौर-ए-हाज़रा के लोग सिर्फ ऐसे ख़ुदा को ही मान सकते हैं जिसकी ज़ात मुहब्बत है। पस इस्लामी तसव्वुर मौजूदा नस्ल के लिए नाक़िस है लेकिन मसीही तसव्वुर-ए-ख़ुदा एक कामिल तसव्वुर है, जो तमाम अक़्वाम ममालिक वाज़ मिन्हु के लोगों के लिए बशारत का बाइस रहा है।

फ़स्ल सोम

उसूल-ए-उखुव्वत

(1)

हमने अपनी किताब **"मसीहीय्यत की आलमगीरी"** के बाब दोम में इस मौज़ू पर मुफ़स्सिल बहस करके ये बतलाया है कि इंजील जलील उखुव्वत-ए-इन्सानी (इंसानी भाईचारे) का सबक़ देती है और मुसावात (बराबरी) की ताअलीम व तलकीन (ताक़ीद) करती है। चूँकि ख़ुदा कुल बनी-नूअ इन्सान का बाप है, लिहाज़ा सब बनी-आदम एक दूसरे के भाई हैं कलिमतुल्लाह ने हुक्म दिया कि सब इन्सान बिला इम्तियाज़ रंग नस्ल, मज़्हब, दर्जा या क़ौम वग़ैरह एक दूसरे से अपने बराबर मुहब्बत रखें।

(2)

लेकिन क़ुरआन मजीद उखुव्वत-ए-इन्सानी (इंसानी भाईचारे) की ताअलीम नहीं देता, हाँ उखुव्वत-ए-इस्लामी की ताअलीम है।

اِنَّمَا الْمُؤْمِنُوْنَ اِخْوَةٌ فَاَصْلِحُوْا بَيْنَ اَخَوَيْكُمْ وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ

"सब मुसलमान एक दूसरे के भाई हैं।" अलीख

(सूरह हुजरात आयत 10)

पस क़ुरआन उखुव्वत-ए-इन्सानी (इंसानी भाईचारे) को महदूद करके लातादाद इन्सानों को उखुव्वत (भाईचारे) के हलक़े से ख़ारिज कर देता है, और उनकी निस्बत हुक्म करता है कि :-

وَ قَاتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّ يَكُوْنَ الدِّيْنُ كُلُّهٗ لِلّٰهِ فَاِنِ انْتَهَوْا فَاِنَّ اللّٰهَ بِمَا يَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ

“ऐ मुसलमानो उनको यहां तक क़त्ल करो कि फ़ित्ना (यानी ग़लबा कुफ़्र) ना रहे और तमाम दीन ख़ुदा का हो जाए। जंग कुफ़्फ़ार के लिए जिस क़द्र तुमसे हो सके क़ुव्वत और घोड़े बाँधने की तैयारी करो ताकि ऐसा करने से तुम अपने और ख़ुदा के दुश्मनों को डराओ। ऐ नबी, मुसलमानों को लड़ाई पर उभारो।” (सूरह अन्फ़ाल आयत 39 तर्जुमा फैज़बख्श एजैंसी)

يٰۤاَيُّهَا النَّبِيُّ جَاهِدِ الْكُفَّارَ وَ الْمُنٰفِقِيْنَ وَ اغْلُظْ عَلَيْهِمْ

“ऐ नबी, काफ़िरों और मुनाफ़िक़ों से जिहाद कर और उन पर सख़्ती कर।” (सूरह तहरीम आयत 9)

اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الَّذِيْنَ يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِهٖ صَفًّا كَاَنَّهُمْ بُنْيَانٌ مَّرْصُوْصٌ

“अलबत्ता अल्लाह उन लोगों को दोस्त रखता है जो उस की राह में सफ़ ब-सफ़ हो कर इस तरह लड़ते हैं कि गोया वो सीसा पिघलाई दीवार हैं।” (सूरह सफ़ आयत 4)

كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ وَهُوَ كُرْهٌ لَّكُمْ ۚ وَعَسٰٓى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْئًا وَّهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ وَعَسٰٓى اَنْ تُحِبُّوْا شَيْئًا وَّهُوَ شَرٌّ لَّكُمْ ۗ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ

"तुम पर क़िताल फ़र्ज़ कर दिया गया और वो तुम पर शाक़ गुज़रता है। मुम्किन है कि एक बात तुमको बुरी लगे लेकिन वो दर-हक़ीक़त तुम्हारे लिए अच्छी हो। अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते।" (सूरह बक़रह आयत 216)

وَ اَعِدُّوْا لَهُمْ مَّا اسْتَطَعْتُمْ مِّنْ قُوَّةٍ وَّ مِنْ رِّبَاطِ الْخَيْلِ تُرْهِبُوْنَ بِهٖ عَدُوَّ اللّٰهِ وَ عَدُوَّكُمْ وَاٰخَرِيْنَ مِنْ دُوْنِهِمْ ۚ لَا تَعْلَمُوْنَهُمْ ۚ اَللّٰهُ يَعْلَمُهُمْ

"तुम काफ़िरों के मुक़ाबले में जहां तक तुमसे हो सके अपना ज़ोर तैयार रखो और घोड़े बाँधे रखो। इस सामान से अल्लाह के दुश्मन और तुम्हारे दुश्मन और उनके सिवा दूसरों पर तुम्हारी धाक रहेगी जिनको तुम नहीं जानते पर अल्लाह जानता है।" (सूरह अन्फ़ाल आयत 60)

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوْٓا اٰبَآءَكُمْ وَاِخْوَانَكُمْ اَوْلِيَآءَ اِنِ اسْتَحَبُّوا الْكُفْرَ عَلَى الْاِيْمَانِ

"मोमिनो ! अगर तुम्हारे बाप और भाई ईमान की निस्बत कुफ़्र को दोस्त रखें तो तुम उनको अपना रफ़ीक़ ना बनाओ।" (सूरह तौबा आयत 23)

فَلَا تُطِعِ الْكٰفِرِيْنَ وَجَاهِدْهُمْ بِهٖ جِهَادًا كَبِيْرًا

"तू काफ़िरों की बात ना मान और उनका बड़े ज़ोर के साथ मुक़ाबला कर।" (फ़ुर्क़ान आयत 54)

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا جَآءَكُمُ الْمُؤْمِنٰتُ مُهٰجِرٰتٍ فَامْتَحِنُوْهُنَّ اَللّٰهُ اَعْلَمُ بِاِيْمَانِهِنَّ ۚ فَاِنْ عَلِمْتُمُوْهُنَّ مُؤْمِنٰتٍ فَلَا تَرْجِعُوْهُنَّ اِلَى الْكُفَّارِ لَا هُنَّ حِلٌّ لَّهُمْ وَلَا هُمْ يَحِلُّوْنَ لَهُنَّ وَ اٰتُوْهُمْ مَّآ اَنْفَقُوْا وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ اَنْ تَنْكِحُوْهُنَّ اِذَآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ وَلَا تُمْسِكُوْا بِعِصَمِ الْكَوَافِرِ وَسْـَٔلُوْا مَآ اَنْفَقْتُمْ وَلْيَسْـَٔلُوْا مَآ اَنْفَقُوْا ذٰلِكُمْ حُكْمُ اللّٰهِ يَحْكُمُ بَيْنَكُمْ وَ اللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ (١٠) وَاِنْ فَاتَكُمْ شَيْءٌ مِّنْ اَزْوَاجِكُمْ اِلَى الْكُفَّارِ فَعَاقَبْتُمْ فَاٰتُوا الَّذِيْنَ ذَهَبَتْ اَزْوَاجُهُمْ مِّثْلَ مَآ اَنْفَقُوْا وَاتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِيْٓ اَنْتُمْ بِهٖ مُؤْمِنُوْنَ (١١)

“मोमिनो मेरे और अपने दुश्मनों को दोस्त ना बनाओ। अगर तुम मेरी राह में जिहाद करने को और मेरी मर्ज़ी की तलाश में निकले हो तो उनको दोस्त ना बनाओ। क़ियामत के दिन ना तुम्हारे रिश्ते काम आएँगे और ना तुम्हारी औलाद। अल्लाह तुमको उनकी दोस्ती से मना करता है जो दीन पर तुमसे लड़े। मोमिनो ! जब तुम्हारे पास ईमानदार औरतें हिज्रत करके आएं तो उन काफ़िरों की तरफ़ वापिस ना लौटाओ। ना वो काफ़िरों को हलाल हैं और ना काफ़िर उन को हलाल हैं। अगर तुम्हारी औरतों में से कोई औरत तुम्हारे हाथ से निकल कर काफ़िरों में जा मिले तुम काफ़िरों को खपा मारो।”

(सूरह ममतहना आयत 10-11, सूरह अन्फ़ाल रुकू 2, सूरह निसा रुकू 17 वग़ैरह वग़ैरह)

हम आयात क़ुरआनी के इक़तिबासात करके इस रिसाले को तूल नहीं देना चाहते। नाज़रीन को अपने रिसाला **“दीन-ए-फ़ित्रत, इस्लाम या मसीहीय्यत”** की फ़स्ल पंजुम की तरफ़ मुतवज्जा करते हैं जहां इन आयात पर बहस की गई है।

(3)

ख़्वाजा कमाल उद्दीन मरहूम कहते हैं :-

> "फ़ज़लाए मसीहीय्यत ने मज़्हब-ए-मुहब्बत की फ़हरिस्त में इस्लाम को दाख़िल करने से ताम्मुल किया है। उन लोगों के दिलों में शायद उन जंगों का ख़्याल होगा जिनकी इजाज़त इस्लाम देता है लेकिन मौजूदा जंग ने इस हज़यान का मुंह बंद कर दिया है जो इस्लाम के ख़िलाफ़ ईसाई मिशनरी पर अप्पा-गुंडा इस अम्र में किया करता था। ख़ुदा तआला ने जंग-ए-अज़ीम पैदा करके उन पादरीयों के हाथ से सब उनके मफ़रूज़ा मोअतक़िदात ख़ाक में मिला दिए। जून 1917 ई॰ में लंदन का बिशप पादरीयों की एक जमाअत को गले में सलीब लटकाए हुए लंदन के बाज़ारों में से फिरता हुआ हाईड पार्क में ले गया। वहां उसने तक़रीर की कि इस जंग में शरीक होना और अपने मुल्क को बचाना ही मज़्हब है। फिर उसने निहायत ही कमज़ोर तरीक़ पर मसीह के ख़ुत्बा ही की इन आयात की कुछ तौज़ीह भी की जो शमूलीयत जंग से रोकती थी।" (यनाबीअ सफ़ा 183)

हमारा जवाब ये है कि अगर लंदन के बिशप या किसी पादरी ने लोगों को लड़ाई करने पर उभारा तो अपने आक़ा की ताअलीम की सरीह (साफ़) ख़िलाफ़वर्ज़ी की। मोअतरिज़ को ख़ुद इक़बाल है कि **"उसने निहायत ही कमज़ोर तरीक़ पर मसीह के ख़ुत्बे"** से इस्तिदलाल किया। मसीहीय्यत जंग को नाजायज़ क़रार देती है चुनान्चे तमाम दुनिया की बैन-उल-अक़वामी मिशनरी कान्फ़्रैंस

ने जो अप्रैल 1928 ई॰ में यरूशलेम में मुनअक़िद हुई थी जंग के मुताल्लिक़ ये क़रार दाद शाएअ की कि :-

> "चूँकि मसीहीय्यत सुलह के शहज़ादे की रूह का इज़्हार है और आलमगीर मज़्हब होने की वजह से क़ौमी और नसली इमतीयाज़ात का इस में दख़ल नहीं है और चूँकि सब तस्लीम करते हैं कि जंग इस रूह के ग़ालिब होने में सद-ए-राह है ये बैन-उल-अक़वामी मिशनरी कान्फ्रैंस सबको दावत देती है कि लगातार कोशिश और दुआ के ज़रीये तमाम रुए ज़मीन की अक़्वाम को इस अम्र पर राग़िब करें कि जंग को तर्क करना हर एक क़ौम के लाएह अमल का जुज़्व (हिस्सा) हो जाये और बैन-उल-अक़वामी तनाज़आत पुर अमन तरीक़ों से फ़ैसला पाएं और इस ज़हनीयत और रूह का ख़ातिमा हो जाए जो जंग की अस्ल और हक़ीक़ी जड़ है।"

हर शख़्स इस अम्र को तस्लीम करेगा कि इंजील जलील और कलिमतुल्लाह के ख़ुत्बात की बिना पर कोई शख़्स लोगों को लड़ाई के लिए उभार नहीं सकता लेकिन क़ुरआन शरीफ़ में साफ़ तौर पर रसूल अरबी को हुक्म मिलता है कि :-

"मुसलमानों को लड़ाई पर उभार और काफ़िरों और मुनाफ़िक़ों पर सख़्ती कर, और उनको यहां तक क़त्ल कर कि फ़ित्ना यानी ग़लबा कुफ़्र जाता रहे और तमाम दीन अल्लाह का हो जाए।"

अहले इस्लाम ये उज़्र (बहाना) पेश करते हैं कि इन इस्लामी जंगों का

"ताल्लुक़ हिफ़ाज़त और ख़ुद इख्तियारी से है। मज़्हब की ख़ातिर जंग करना ना तो इशाअत मज़्हब के लिए जायज़ है ना किसी को ज़बरदस्ती मज़्हब में दाख़िल करने के लिए।"

(यनाबीअ सफ़ा 184)

मौलाना मुर्तज़ा अहमद ख़ान भी कहते हैं :-

"क़ुरआन हकीम में जिस तरह नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात ऐसे फ़राइज़ असासी की अदायगी के लिए मुसलमानों को जाबजा साफ़ और सरीह अहकाम दीए गए हैं इसी तरह हजरत बारी तआला अज अस्मा (उस के नाम की इज्जत व तारीफ़ हो) ने मुसलमानों को दीन मुबय्यन की हिफ़ाज़त और अपने नामूस जानों और अम्वाल (मालो) की मुदाफ़अत (बचाओ) के लिए जाबजा क़िताल फ़ी सबील अल्लाह की ताकीद की है।"

(रोज़नामा एहसान 31 दिसंबर 1934 ई॰)

लेकिन क़ुरआन के अल्फ़ाज़ और बिल-ख़सूस आयत क़िताल के अल्फ़ाज़ साफ़ और वाज़ेह हैं :-

فَاِذَا انْسَلَخَ الْاَشْهُرُ الْحُرُمُ فَاقْتُلُوا الْمُشْرِكِيْنَ حَيْثُ وَجَدْتُّمُوْهُمْ وَ خُذُوْهُمْ وَ احْصُرُوْهُمْ وَ اقْعُدُوْا لَهُمْ كُلَّ مَرْصَدٍ ۚ فَاِنْ تَابُوْا وَ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتَوُا الزَّكٰوةَ فَخَلُّوْا سَبِيْلَهُمْ ۚ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ

“जब हुर्मत के महीने गुज़र जाएं तो मुशरिकों को जहां पाओ क़त्ल करो। उनको पकड़ो और घेरो और हर घात की जगह में उनके लिए बैठो। फिर अगर वो तौबा करें (यानी मुसलमान हो जाएं) और नमाज़ पढ़ें और ज़कात दें तो तुम उनकी राह छोड़ दो (जहां चाहें फिरें)” (सूरह तौबा आयत 5 तर्जुमा फैज़बख्श एजेंसी)

قَاتِلُوا الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَلَا بِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَلَا يُحَرِّمُوْنَ مَا حَرَّمَ اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗ وَ لَا يَدِيْنُوْنَ دِيْنَ الْحَقِّ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ حَتّٰى يُعْطُوا الْجِزْيَةَ عَنْ يَّدٍ وَّهُمْ صٰغِرُوْنَ

“अहले-किताब में से जो लोग अल्लाह और आख़िरी दिन पर ईमान नहीं लाते और अल्लाह और उस के रसूल की हराम की हुई शए को हराम नहीं जानते और दीन हक़ (इस्लाम) क़ुबूल नहीं करते तुम मुसलमान ऐसों से मुक़ाबला करो यहां तक कि वो अपने हाथों से जज़्या दें और ज़लील हो कर रहें।” (तौबा आयत 29)

इस उज़्र (बहाने) के मुताल्लिक़ मरहूम हाफ़िज़ नज़ीर अहमद देहलवी के अल्फ़ाज़ गौरतलब हैं और इस को उज़्र लंग (ग़लत और लग़ू) उज़्र साबित करते हैं। मरहूम इस्लामी जंगों के दिफ़ाई (बचाओ वाले) दस्तूर-उल-अमल पर बहस के दौरान में फ़रमाते हैं कि :-

> “पैग़म्बर साहब की ज़िंदगी में मुख़ालिफ़ीन इस्लाम के साथ लड़ाईयों का सिलसिला बराबर जारी रहा। लड़ाईयां बज़ाहिर दो क़िस्म की थीं, हर्ब-ए-मुदाफ़अत (बचाओ की लड़ाई) कि दुश्मन मुसलमानों पर चढ़ कर आए और मुसलमानों ने उनको मार हटाया और हर्ब-ए-तग़ल्लुब (ग़लबे की लड़ाई) कि मुसलमान इंतिक़ाम के लिए या तहफ़्फ़ुज़-ए-आइंदा की ग़रज़ से इज़हार-ए-

शौकत व जलादत (बहादुरी, चालाकी) के लिए दुश्मनों पर चढ़ कर गए। मारा, लूटा, खसुटा, बाँधा, जकड़ा, सालमन ग़ानमन वापिस आए। गो बज़ाहिर लड़ाई की दो क़िस्में थीं हर्ब-ए-मुदाफ़ात (बचाओ के लिए लड़ाई) और हर्ब-ए-तग़ल्लुब (ग़ालिब होने के लिए लड़ाई) मगर अज़बस कि हर्ब-ए-तग़ल्लुब भी तहफ़्फ़ुज़ आइंदा के लिए की जाती थी हम हर्ब तग़ल्लुब को भी हर्ब मुदाफ़अत की क़िस्म में दाख़िल समझते हैं।"

(उम्हात-उल-उम्मतियह सफ़ा 93)

(5)

पस क़ुरआनी आयात और रसूल अरबी की जंगें और ग़ज़वात मरहूम ख़्वाजा साहब और उनके हम-ख़याल अस्हाब के उज़्र (बहाने) को नामाअ्क़ूल साबित करते हैं, कि :-

"इशाअत-ए-मज़्हब की ख़ातिर जंग करना ना तो जायज़ है।" और ना किसी को ज़बरदस्ती मज़्हब के अंदर रखना जायज़ है। क़ुरआन अहादीस और इस्लामी तारीख़ साबित करती है कि इशाअत इस्लाम की ख़ातिर जंग करना और मुसलमानों को बज़रीये तल्वार हलक़ा-ए-इस्लाम में रखना जायज़ है क्योंकि मुर्तद (इस्लाम से फिरे हुए) की सज़ा क़त्ल है। मौलाना ज़फ़र अली ख़ान ऐडीटर ज़मीनदार लाहौर ने मार्च 1925 ई॰ की इशाअतों में इस मसअले

पर तवील बहस करके ये साबित कर दिया है कि अगर कोई शख़्स इस्लाम के दायरे को छोड़ना चाहे तो अज़-रूए इस्लाम वो महरूम-उल-अरस और मुस्तूजिब क़त्ल है। कुफ़्फ़ार को बज़ोर सैफ़ (तल्वार के ज़ोर से) इस्लाम में दाख़िल करना और जो मुसलमान हो चुके हैं उनको बज़ोर-ए-सैफ़ (तल्वार के ज़ोर से) इस्लाम के दायरे के अंदर रखना ग़ैर-मुंसिफ़ाना अहकाम और जानिब-दाराना रवैय्या है। किसी शख़्स या मज़्हब को रवा नहीं कि वो किसी इन्सान की ज़मीर पर जबर रवा रखे ऐसे मज़्हब को आलमगीरी का दाअवा जैब नहीं देता। लेकिन इस्लाम इस क़िस्म का जबर रवा रखता है, मुर्तद इस दुनिया में क़त्ल का और आइन्दा जहान में दोज़ख़ का मुस्तूजिब है। (बक़रह आयत 217) क़ुरआनी हुक्म है कि :-

وَ اِنۡ فَاتَكُمۡ شَیۡءٌ مِّنۡ اَزۡوَاجِكُمۡ اِلَی الۡكُفَّارِ فَعَاقَبۡتُمۡ فَاٰتُوا الَّذِیۡنَ ذَهَبَتۡ اَزۡوَاجُهُمۡ مِّثۡلَ مَاۤ اَنۡفَقُوۡا ؕ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِیۡۤ اَنۡتُمۡ بِهٖ مُؤۡمِنُوۡنَ

“अगर ईमानदार औरतें हिज्रत करके आएं तो उन्हें काफ़िरों की तरफ़ ना लौटाओ। लेकिन अगर तुम्हारी औरतों में से कोई औरत तुम्हारे हाथ से निकल कर काफ़िरों में जा मिले तो तुम काफ़िरों को खपा मारो।”

(सूरह ममतहना आयत 11)

(6)

कोई मज़्हब आलमगीर नहीं हो सकता जो बनी-नूअ इन्सान के दिलों और ज़मीरों पर जबर रवा रखता है। रसूल-ए-अरबी और आपके सहाबा ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन ने इन अहकाम पर अमल किया। चुनान्चे जब रसूल अरबी ने मुआज़ बिन जबल को यमन का गवर्नर बना कर भेजा तो आपने उस को हुक्म दिया कि :-

"عن معاذ بن جبل ان رسول الله صلى الله عليه وسلم قال له حين بعثه الى اليمن: ايما رجل ارتد عن الاسلام فادعه، فان تاب، فاقبل منه، وان لم يتب، فاضرب عنقه، وايما امرأة ارتدت عن الاسلام فادعها، فان تابت، فاقبل منها، وان ابت فاستتبها"۔

"जो शख़्स इस्लाम से मुर्तद हो जाए उस को इस्लाम की तरफ़ बुलाना, अगर वो तौबा करे तो क़ुबूल कर लेना वर्ना गर्दन मार देना। अगर कोई औरत मुर्तद हो जाएगी तो उस को भी इस्लाम की तरफ़ बुलाना अगर तौबा करे तो बेहतर वर्ना उस की भी गर्दन मार देना।"

(मजमा-उल-ज़वायद 263, जिल्द : 6)

जब हज़रत अबू बक्र ख़लीफ़ा हुए तो आपने फ़रमाया कि :-

> "जिस क़ौम ने जिहाद फ़ी सबीलील्लाह (अल्लाह की राह में जिहाद) को छोड़ा उस को ख़ुदा ने ज़िल्लत में डाला। मैंने ख़िलाफ़त को महज़ इस वास्ते क़ुबूल किया क्योंकि मुझे ख़ौफ़ पैदा हो गया

था कि कहीं फ़ित्ना और फित्ने के बाद इर्तिदाद (इस्लाम से फिरना, यानी रुगिरदानी) ना हो जाए।"

(तारीख़-उल-खुलफ़ा मुसन्निफ़ जलाल उद्दीन सियूती सफ़ा 44)

रसूल अरबी की वफ़ात के बाद :-

"अक्सर अहले अरब मुर्तद (इस्लाम को छोड़ने वाले) हो गए, उन्होंने नमाज़ पढ़ने और ज़कात देने से इन्कार कर दिया। लोगों में निफ़ाक़ पैदा हो गया। अरब मुर्तद हो गए और अंसार जुदा हो गए। हज़रत अबू बक्र ने ख़ालिद बिन वलीद को भेजते वक़्त हिदायत फ़रमाई कि मुर्तदीन से पाँच उमूर की निस्बत जंग करना अगर कोई इनमें से एक से भी इन्कार करे तो उस से ऐसा ही जंग करना कि वो पांचों से इंकारी है यानी ला-इलाह अल्लाह और मुहम्मद अब्दुहु व रसूलुहु, नमाज़ पढ़ना, ज़कात देना और रोज़ा रखना है। ख़ालिद इब्ने वलीद रवाना हुए, मुख़ालिफ़ीन में से गिरोह बनी असद व अतफ़ा वग़ैरह बहुत से क़त्ल हुए और बहुत से क़ैद और बाक़ी इस्लाम पर क़ायम हो गए।"

(तारीख़-उल-खुलफ़ा सफ़ा 47 ता 49)

जब तक सैफ (तल्वार) ग़ालिब रही निफ़ाक़ और इर्तिदाद (इस्लाम छोड़ जाना) मग़्लूब (रुका) रहा।

क़ुरआन गवाह है कि रसूल अरबी अपनी हीने-हयात (जीते जी) में मुनाफ़क़ीन के हाथों नालां (रोता हुआ, तंग, फ़र्यादी) रहे थे आपने उनको बज़ोर-ए-सैफ़ (तल्वार के जोर से) मुसलमान किया था। आपने मुनाफ़क़ीन के साथ जो रवैय्या इख़्तियार किया इस से आप अरब के मुख़्तलिफ़ क़बाइल को चंदे यकजा जमा करने में कामयाब हो गए थे लेकिन जूंही आपकी आँख बंद हुई, मुख़्तलिफ़ क़बाइल में मिस्ल साबिक़ इख़्तिलाफ़ और जंग बरपा हो गए। आँहज़रत की वफ़ात के बाद की सौ (100) साल की तारीख़ के औराक़ इन क़बाइल की बाहमी अदावतों अंदरूनी तफ़र्रुक़ों (फ़िर्क़े बाज़ी) और ख़ाना जंगियों के ख़ून से लाल नज़र आते हैं। आपकी वफ़ात के पच्चास (50) साल के अंदर आपके कलिमा गो मुसलमानों ने आपके खलिफ़ा हज़रत उस्मान और हज़रत अली को शहीद कर दिया और आपके नवासों और उनकी औलाद के ख़ून से अपने हाथ रंगे। तारीख़ पढ़ने वाला हैरान रह जाता है कि और आँखें मलकर पूछता है कि क्या ये वही इस्लाम है जिसने सातवीं (7) सदी में अहले अरब को यकजा कर दिया था। फिर क्या वजह है कि पच्चास (50) साल के अंदर अंदर इस की तरक़्क़ी मस्दूद हो गई? इस का जवाब ये है कि इन क़बाइल का इस्लाम सिर्फ़ सतही (उपरी) इस्लाम था क्योंकि वो बज़ोर-ए-शमशीर (तल्वार के जोर से) मुसलमान किए गए थे।

(7)

मिर्ज़ा-ए-क़ादियान ने इस्लाम में इस्लाह करनी चाही ताकि नई रोशनी के लोग इस्लामी उसूल को मान सकें। इस मक़्सद को ज़ेर-ए-नज़र रखकर उसने जिहाद के अदम जवाज़ (जायज़ नहीं) का फ़त्वा दे दिया और कहा अज़-रूए क़ुरआन जिहाद बिल-सैफ (तल्वार के साथ जिहाद) जायज़ नहीं। चुनान्चे उस का एक शेअर है :-

दुश्मन है वो ख़ुदा का जो करता है अब जिहाद

मुन्किर नबी का है जो ये रखता है एतिक़ाद

इस पर ग़ैर मिर्ज़ाई कहते हैं कि :-

"मिर्ज़ा साहब को ये हक़ किस तरह हासिल हो गया कि ख़ुदा ने जिस बात को हलाल किया है उसे हराम कर दें। अगर उनको ऐसा ही करना था तो उनको चाहीए था कि क़ुरआन में कुतर बेअंत (काण्ट छांट) करने की बजाय कोई जाअली (नक्ली) क़ुरआन बना लेते। क़ुरआन में बे-सरोपा तावीलात को कोई गुंजाइश नहीं।"

(ज़मीनदार 6 जुलाई 1935 ई॰)

"क़ुरान-ए-पाक की ताअलीम पर बे-बाकाना (बेबाकी से, शोख़ी से) ख़त-ए-नस्ख़ (एक अरबी ख़त का नाम) खींचना किसी मुसलमान और हज़रत खतमी मर्तबत ﷺ के सच्चे मतबा (पैरवी करने वाले) का काम नहीं हो सकता। क़ुरआन के एक हिस्सा का इन्कार जैसा

कि जिहाद व क़िताल के बारे में किया गया है कलाम रब्बानी का इन्कार यानी इस्लाम का इन्कार है।"

(एहसान 31 दिसंबर 1934 ई॰)

मर्ज़ा-ए-क़ादियान के मुरीद यही रोना रोते हैं कि :-

"तब्लीग़ दीन के लिए तल्वार की ज़रूरत मुसलमानों के दिमाग़ों पर मुसल्लत रही।"

(पैग़ाम सुलह 23 जून 1928 ई॰)

इस के जवाब में मौलवी सना उल्लाह अमृतसरी लिखते हैं :-

"चूँकि मुसलमान क़ुरआन व हदीस दोनो को मानते हैं, इसलिए उन का अक़ीदा है الجهاد فی ماض الی یوم القیامة यानी **"जिहाद क़ियामत तक जारी रहेगा।"** अहले हदीस इस हदीस को भी ज़ाहिर करते और मानते हैं जिसमें इर्शाद है कि **"इस्लाम की बुलंदी जिहाद में है।"** अहले हदीस क़ुरआन मजीद की इस आयत पर भी ईमान रखते हैं जिसमें इर्शाद है कि **"जो लोग दुनिया पर आख़िरत को तर्जीह देते हैं वो अल्लाह की राह में जिहाद किया करें।"** मगर अहले हदीस इस जिहाद के लिए ज़रूरी जानते हैं कि इमामे वक़्त (अमीर के हुक्म) के मातहत हो जैसा इर्शाद है कि अमीर वक़्त के हुक्म के मातहत जिहाद किया जाये। चूँकि मसअला जिहाद के मुताल्लिक़ आयात और अहादीस बकस्रत वारिद हैं इसलिए जो आजकल का रीफ़ारमर (इस्लाह कार) इस

मुक़द्दस फैअल को मंसूख़ क़रार देता है अहले हदीस इस को ख़ुदग़रज़ और ख़ुशामदी जानते हैं।"

(अहले हदीस अमृतसर 3 अगस्त 1928 ई॰)

(8)

अगर हम इस्लामी तारीख़ पर एक सतही नज़र डालें तो इस्लाम के इन रिफारमरों (इस्लाह कारों) के दाअवों का पोल खुल जाता है। सूरह तौबा आयत 29 (जिसका इक़्तिबास ऊपर किया गया है) की बिना पर ईसाईयों से ना सिर्फ जज़्या वसूल किया जाता था बल्कि उन पर ऐसी शराइत आइद की जाती थीं जिनसे खुल्लम खुली बेइज़्ज़ती हो मसलन[5] जज़्या की शराइत में जेल के उमूर शामिल थे :-

(1) वो पाक किताब (क़ुरआन) पर हमला ना करें और ना उस को मुहर्रिफ़ (तहरीफ़) किया गया गर्दानें।

(2) वो रसूल अरबी को कज़्ज़ाब (झूटों का बादशाह) ना कहें और ना उस की तरफ़ हक़ारत से इशारा करें।

5 The Eclipse of Christianity in Asia ,by Browne,p.46-47

(3) दीन इस्लाम पर कोई हर्फ़ ना लगाऐं और ना इस के ख़िलाफ़ तक़रीरें करें।

(4) किसी मुसलमान औरत के साथ निकाह या ज़िना ना करें।

(5) किसी मुसलमान को दीन इस्लाम से ना फेरें और ना मुसलमानों को और ना उनके मक़बूज़ात को नुक़्सान पहुंचाएं।

(6) वो मुसलमानों के दुश्मनों की मदद ना करें और ना जासूसों को पनाह दें।

इन फ़राइज़ के इलावा छः और शराइत थीं कि :-

(1) वो ख़ास क़िस्म के कपड़े पहनें जिनसे उनकी इम्तियाज़ हो जाए और ज़न्नार (زنّار) (वो तागा या ज़ंजीर जो ईसाई, मजूसी और यहूदी कमर में बाँधते हैं) भी पहनें।

(2) उनकी इमारतें मुसलमानों की इमारतों से नीची हों।

(3) वो नाक़ूस (संख् जो हिंदू पूजा करते वक़्त बजाते हैं) ना बजाएँ, ना अपनी कुतुब मुक़द्दसा पढ़ें और ना सय्यदना मसीह के दाअवों को पेश करें।

(4) अपने मर्दों को बग़ैर नोहा (मातम) किए ख़ामोशी से दफ़न करें।

(5) वो घोड़ों पर सवार ना हों बल्कि खच्चरों और गधों को सवारी के लिए इस्तिमाल करें।

(6) वो एलानिया शराब ख़ारी और ख़नाज़ीर से परहेज़ करें और लोगों को एलानिया सलीब ना दिखाएं।

मोअख़्ख़र-उल-ज़िक्र छः (6) शराइत का अहद नामों में होना लाज़िमी ना था लेकिन अगर वो अहद नामों में दर्ज होतीं तो वो पहली छः शराइत की तरह लाज़िमी क़रार दी जातीं। जो अहद नामे ईसाईयों के साथ किए गए वो ज़ाहिर करते हैं कि फ़ातिह मुसलमान जज़्या और तल्वार पेश करते थे। चुनान्चे (खलीफा अबू बक्र) ख़ालिद बिन वलीद को कहता है कि :-

> “अबू बक्र सिद्दीक़ ने मुझे हुक्म दिया कि जब मैं यमामा से वापिस आऊँ तो इराक़ के अरब और ग़ैर अरब के पास जाऊं। उनको ख़ुदा और रसूल की तरफ़ दाअ्वत दूं, बहिश्त की ख़ुशख़बरी सुनाऊँ और जहन्नम से डराऊं। अगर वो मान लें तो उनको वही हुक़ूक़ हासिल होंगे जो मुसलमान को हासिल हैं। जब मैं हीरा में आया तो वहां के सरकर्दा अश्ख़ास मेरे पास हाज़िर हुए, मैंने उनको ख़ुदा और रसूल की दावत दी, जब उन्होंने मानने से इन्कार किया मैंने उनके सामने तल्वार और जज़्या पेश किया, उन्होंने जवाब दिया कि हम में ताक़त नहीं कि आपके साथ जंग करें,

आप हमारे साथ जज़्या की इन शराइत पर सुलह कर लें जो दीगर अहले-किताब ने मान ली हैं।"[6]

हज़रत अबू बक्र का क़ौल है कि :-

<u>"जिस क़ौम ने जिहाद छोड़ दिया वो अज़ाब में फंस गई।"</u>

(तबरानी)

मिसोपोतामियह (مسوپوتامیہ) के शहरों के ईसाईयों के साथ इलावा दीगर शराइत के ये शर्तें थीं कि वो नए गिरजे और इबादत ख़ाने तामीर नहीं करेंगे, गिरजा घरों के घंटे नहीं बजाएँगे, ईद क़ियामत के बाद सोमवार के त्योहार को एलानिया नहीं मनाएंगे और ना सलीब को एलानिया दिखाएँगे।[7] बनू तग़ल्लुब के ईसाईयों के साथ ये शर्त की गई कि वो अपने बच्चों को बपतिस्मा दिलवा कर मसीहीय्यत के दायरे में दाख़िल नहीं करेंगे।[8] हज़रत उमर बिन ख़िताब ने अपनी ख़िलाफ़त के ज़माने में अहले-किताब को अरब से निकाल दिया क्योंकि उन्होंने सुना था कि रसूल अल्लाह ने कहा है कि अरब में दो मज़ाहिब यकजा (इकठ्ठा) नहीं रह सकते, अगरचे बख़रान के मसीहीयों के साथ हज़रत मुहम्मद साहब ने अहद किया था ताहम हज़रत उमर ने उन को

6 Ibid p.31
7 Ibid p.32
8 Ibid p.33

अरब से बद्र (बाहर) कर दिया।[9] ख़लिफ़ा ने ना सिर्फ नए गिरजा-घरों को तामीर ना होने दिया, बल्कि उन्होंने उन गिरजाओं को जो मौजूद थे मस्जिदों में तब्दील कर दिया और बेशुमार गिरजा-घरों को शहीद कर दिया। चुनान्चे ख़लीफ़ा हाकिम ने चालीस हज़ार (40000) गिरजाओं और ख़ानक़ाहों को मिस्मार (ढाना, गिरा देना) कर दिया।[10]

> "ख़लीफ़ा उमर सानी ने तो यहां तक हुक्म दे दिया कि ईसाई रेशमी लिबास ज़ेब-ए-तन (पहना) ना करें, अपनी पेशानी पर से बाल कटवाएं, सड़क के एक किनारे हो कर चला करें, ख़लीफ़ा मुतवक्किल ने तमाम ईसाईयों को गुलू बंद बाँधने का हुक्म दिया।" (तारीख़-उल-खुलफ़ा सफ़ा 233)

ये भी हुक्म दिया कि उनकी सवारी की काठी लकड़ी की हो, उनके इबादत ख़ाने मिस्मार (तबाह) कर दिए जाएं, उनके घरों में से दस (10) फ़ीसदी मिस्मार कर दिए जाएं और उनकी जगह एक मस्जिद तामीर कर दी जाये, उनके घरों की चौखटों पर शयातीन की सूरतों वाली लकड़ी की बना कर लटकाई जाएं, उन को कोई सरकारी ओहदा ना दिया जाये जिससे वो मुसलमानों पर हुक्म चला सकें, उनके लड़के इस्लामी दर्स-गाहों में दाख़िल ना किए जाएं और ना कोई मुसलमान किसी ईसाई लड़के को पढ़ाए, खजूर वाले इतवार के

9 Ibid p.34-35
10 Ibid p.6.

रोज़ सलीब का इस्तिमाल ममनू (मना) क़रार दिया गया। उसने हुक्म दिया कि ईसाईयों की क़ब्रें खोद कर ज़मीन के साथ हमवार की जाएं ताकि वो मुसलमानों की क़ब्रों के मुशाबेह ना हों, हुक्म हुआ कि इस्लामी अदालतों में किसी ईसाई की गवाही क़ुबूल ना की जाये। शायद नाज़रीन ये ख़्याल करें कि हमने खलिफ़ा में से ऐसे लोगों के कारनामे बतलाए हैं जो बदनाम कनुंदा निको माने चंद थे बल्कि हमने सिर्फ उन खलिफ़ा की निस्बत लिखा है जो इस्लामी नुक़्ता-ए-निगाह से क़ाबिल-ए-क़दर हस्तियाँ हैं। हलाकों ख़ां के मुसलमान जांनशीनों ने गिरजाओं को शहीद कर दिया, पादरीयों को तरह तरह के अज़ाब देकर क़त्ल कर दिया, ख़ानक़ाहों को बर्बाद कर दिया, हज़ारों औरतों और बच्चों को ग़ुलाम बना लिया, ईसाईयों को हुक्म दिया कि मुसलमान हो जाएं। ख़रबंदा ख़ान ने उन ईसाईयों के जो मुसलमान नहीं हुए थे आज़ाए तनासुल (शर्मगाह) को काट दिया उनकी आँखें निकलवा दीं। तैमूर लंग के ज़माने में ईज़ा रसानी (सताव) का ये हाल था कि ईसाई ख़ाल-ख़ाल (बहुत कम) नज़र आते थे। बग़दाद, मूसिल वग़ैरह शहर जिनमें हज़ारों ईसाई आबाद थे उनसे यकसर ख़ाली हो गए। मिस्र में भी ईसाईयों के साथ ऐसा ही सुलूक किया गया। ममलूक सुल्तान अल-नासिर मुहम्मद ने गिरजाओं को शहीद कर दिया और

शाही फ़र्मान जारी कर दिया कि जो ईसाई जहां मिले क़त्ल कर दिया जाये और उस का माल व असबाब छीन लिया जाये।[11]

हम चंद ममालिक की मिसालों से वाज़ेह करते हैं[12] कि तल्वार का इस्लाम की इशाअत के साथ गहिरा ताल्लुक़ है। अबदालले बिन क़ैस ने 674 ई॰ में केरीट (Crete) पर हमला किया और इस के बाद 825 ई॰ तक इस्लामी अफ़्वाज गाहे-गाहे (कभी-कभार) लूट मार करती थीं लेकिन इस साल उन्होंने जज़ीरे को फ़त्ह कर लिया और बाशिंदों को मुसलमान बना लिया। 921 ई॰ में ईसाईयों ने इस जज़ीरे को फ़त्ह किया और इस के बाद की सात (7) सदीयों तक वहां के बाशिंदे ईसाई रहे। 1645 ई॰ में तुर्कों ने इस को दुबारा फ़त्ह कर लिया और बाशिंदों को मुसलमान बना लिया। 1920 ई॰ में ये जज़ीरा यूनान के क़ब्ज़े में आ गया और अब इस जज़ीरे की एक बड़ी अक्सरीयत ईसाईयों की है। इसी तरह जज़ीरा किप्रस (Cyprus) पर मुसलमानों ने 647 ई॰ से 966 ई॰ तक हमले कर के फ़त्ह कर लिया और बाशिंदों को मुसलमान बना लिया। 1878 ई॰ में सुल्तान अब्दुल हमीद सानी ने ये जज़ीरा इंग्लिस्तान के सपुर्द कर दिया और अब इस जज़ीरे में मुसलमानों की तादाद क़लील (कम) है। इसी तरह सिसली में मिस्र के मुसलमान ने 652 ई॰ से पै दर पै (एक के बाद एक)

11 Ibid Chap:2

12 Sociology of Islam,vol by Reuben Levy,Lecturer in Persian in Cambrige

हमले किए और 962 ई॰ में इस पर क़ाबिज़ हुए और तमाम बाशिंदों को मुसलमान बना लिया। जब 1060 ई॰ में मुसलमानों को शिकस्त हुई तो उस के बाशिंदों ने फिर अपना आबाई मज़्हब इख़्तियार कर लिया। यही हाल हसपानीया का हुआ, जब वो खलिफ़ा के ज़ेर नगीन (मातहत) था तो लोग मुसलमान हो गए थे, लेकिन जब 1610 ई॰ में मुसलमान फ़ातहीन वहां से निकाल दीए गए तो वहां के बाशिंदों ने अपना क़दीम मज़्हब फिर इख़्तियार कर लिया और अब वहां मुसलमानों का नामोनिशान भी नज़र नहीं आता।

(9)

जो अस्हाब इस ग़लती में मुब्तला हैं कि इस्लाम ने दुनिया में उखुव्वत व मसावात (इंसानी भाईचारा व बराबरी के हुकुक़) का रिश्ता क़ायम और मज़्बूत कर दिया है हम उनकी तवज्जा सय्यद मक़्बूल अहमद साहब बी॰ ए॰ की किताब **“फ़ल्सफ़ा मज़्हब”** की तरफ़ मबज़ूल करते हैं, सय्यद साहब लिखते हैं कि :-

> “एक आम ग़लतफ़हमी का इज़ाला कि इस्लामी उखुव्वत (भाईचारा) दुनिया के लिए बाइस-ए-अमन है ज़रूरी है। इस में शक नहीं कि इस्लाम ने ख़ुद अपनी जुदागाना क़ौमीयत दुनिया में बना ली है जिसके सिर्फ ये मअनी हैं कि क़ौमों के शुमार में एक अजीब माजून मुरक्कब क़ौम का इज़ाफ़ा हो गया है, जिस

का ताल्लुक़ दूसरी ग़ैर-मुस्लिम क़ौमों से बिल्कुल इसी तरह है जिस तरह दूसरी मुख़ालिफ़ और मुख़्तलिफ़ क़ौमों में। इसलिए जब तक वो ख़ैर-उल-क़ुरून (इस्लाम का इब्तिदाई दौर) जिसकी उम्मीद सिर्फ़ ज़हूर इमाम महदी के वक़्त की जा सकती है यानी जब तक दुनिया में सिर्फ एक मज़्हब इस्लाम फैल जाएगा और तमाम मज़ाहिब मफ़्क़ूद (ग़ायब) या इस्लाम में जज़ब हो जाएंगे हमसे दूर है उस वक़्त तक इस्लाम के वजूद से दुनिया के अमन में किसी इज़ाफ़े की उम्मीद रखना अबस (फ़ुज़ूल) है।..... इस्लाम ने बजाए इस के कि क़ौमीयत की लानत को कम करे एक और क़ौम का इज़ाफ़ा करके उनको बढ़ा दिया है, ना सिर्फ ये बल्कि वो इफ़्तिराक़ (जुदाई, इख़्तिलाफ़) जो एक क़ौम में पहले से ना था और ना होना चाहीए इस क़ौम में इस्लाम फैलने पर पैदा हो गया। यानी वो एक क़ौम दो क़ौमों में जल्द तक़्सीम हो जाती है जो एक दूसरे के साथ वही मुआशरत रखते हैं जो मुतज़ाद क़ौमों में होती है।..... ख़ुद हमारे मुल्क को देखो मुसलमानान-ए-हिंद को अपनी क़ौम हिंद की तरक़्क़ी से कोई सरोकार नहीं, वो बहैसीयत मजमूई एक जुदागाना क़ौम है जिनकी ज़बान जुदा, मुआशरत जुदा, रिवायत जुदा, वो अपने मुल्की लिटरेचर (अदब) से ना-बलद (नावाक़िफ़), हिन्दुस्तान की ही तरक़्क़ी से मुतनफ़्फ़िर (नफरत करने वाले), अपने मुल्की आबा व अजदाद (बाप दादा) की औलाद होने से आर (ऐब, शर्म), अपने सर-ज़मीन के आसार अज़ीम से बे ख़ुबरू मुअर्रा और उनको अगर ले देकर कुछ दिया है तो हारून रशीद और तैमूर की दास्तान याद है, अगर उनको किसी के इन्तिसाब से फ़ख़्र है तो वो अरब व अजम है।"

(रिसाला निगार मई 1928 ई॰)

फ़स्ल चहारुम

उसूल-ए-मुसावात

(1)

हमने अपने रिसाले **"मसीहीय्यत की आलमगीरी"** के बाब दोम की फ़स्ल अव्वल में ये साबित कर दिया है कि इंजील जलील का एक एक वर्क़ मुसावात (बराबरी के हुकुक़) के सुनहरे उसूल से मुज़य्यन (आरास्ता) है। इंजील के आलमगीर उसूल-ए-मुहब्बत उखुव्वत व मसावात (भाईचारा व बराबरी के हुकुक़) से कोई शख़्स या तबक़ा मुस्तसना (अलग) नहीं किया गया। इंजीली उसूल मुसावात ने हर तरह की तफ़रीक़ और दर्जा बंदी को मिटा दिया। ग़ुलाम और आज़ाद, ग़रीब और दौलतमंद, आला और अदना, आलिम और जाहिल, मर्द और औरत का इम्तियाज़ ग़रज़ ये कि हर क़िस्म के इम्तियाज़ात इस दुनिया से रुख़्सत हो गए। **मत्ती 5 बाब, 7 बाब, 18 बाब, 22 बाब, 25 बाब, मरक़ुस 12 बाब, लूक़ा 6 बाब, 10 बाब, यूहन्ना 13 बाब, 15 बाब, रोमीयों 2 बाब, 5 बाब, 6 बाब, 8 बाब, 12 बाब, 13 बाब, 1_कुरिन्थियों 1 बाब, 13 बाब,**

2_कुरिन्थियों 5 बाब, 6 बाब, इफ़िसियों 4 बाब, 5 बाब, ग़लतीयों 4 बाब, 5 बाब, कुलस्सियों 3 बाब, 1_यूहन्ना 2 बाब, 3 बाब, 4 बाब वग़ैरह वग़ैरह)

(2)

गुलामी और उसूल मुसावात

लेकिन इस्लाम में मुसावात (बराबरी के हुकुक़) के उसूल नहीं मिलते, गुलामी और दर्जा बन्दी उसूल मुसावात के मुनाफ़ी (खिलाफ) हैं। इस्लाम में रसूल अरबी ने गुलामी की क़बीह रस्म को क़दीम अरब से लिया। गो क़ुरआन ने हुक्म दिया कि गुलामों से सख़्ती ना की जाये। (निसा आयत 40) और आपने उनको आज़ाद करना कारे सवाब क़रार दे दिया लेकिन क़ुरआन व हदीस में हमको कोई ऐसी बात नहीं मिलती जिससे ज़ाहिर हो कि उनका मंशा ये है कि गुलामी की रस्म सफ़ा हस्ती से नाबूद (ख़त्म) हो जाए। यही वजह है कि जिस तरह ज़माना-ए-जाहिलीयत में दस्तूर था इस्लाम में भी गुलाम ख़रीदे और तोहफ़ा के तौर पर दिए जा सकते हैं और विरसा में मिल सकते हैं। हाँ आज़ाद मुसलमान गुलाम नहीं बनाया जा सकता, लेकिन काफिर जो जंग में हाथ आजाऐं वो गुलाम किए जा सकते हैं। शरीअत इस्लामी के मुताबिक़ गुलाम जायदाद के तौर पर शुमार किए जाते हैं और उनकी ख़रीद व फ़रोख़्त हो सकती है। उनका दर्जा घर के दीगर हैवानों के बराबर क़रार दिया गया है।

मालिक अपने ग़ुलामों और बांदियों (बांदी की जमा, लौंडी) को फ़रोख़्त कर सकता है, उनको रहन (गिरवी, ज़मानत के तौर पर) कर सकता है, उनसे काम कराके उज्रत (मजदूरी) वसूल कर सकता है और दीगर ज़रीये से उनकी आमदनी हासिल कर सकता है। ग़ुलाम किसी शैय का मालिक नहीं, वो जायदाद का वारिस नहीं। ग़ुलाम और बांदी का दर्जा जिस्मानी और अख़्लाक़ी तौर से दीगर इन्सानों से कम है। अदालत में उस की शहादत क़ाबिल-ए-क़ुबूल नहीं। अगर कोई आज़ाद मुसलमान किसी ग़ुलाम को क़त्ल कर दे तो वो बाज़ार के नर्ख़ के मुताबिक़ मक़्तूल ग़ुलाम की क़ीमत अदा कर दे। हनफ़ी और शाफ़ई मज़ाहिब के मुताबिक़ गुलाम दो से ज़्यादा निकाह नहीं कर सकता ख़्वाह वो आज़ाद भी किया गया हो। अगर ग़ुलाम शादी करना चाहे तो वो मालिक को रज़ामंद होने पर मज्बूर नहीं कर सकता।[13] गुलामी की क़बीह (बुरी) रस्म तमाम इस्लामी ममालिक में मुरव्वज रही है या मौजूद है। आज के रोज़ सऊदी अरब के क़तअ (قطعہ) में जो ख़ालिस इस्लामी मुल्क है, गुलामी की रस्म क़ानूनी तौर पर नाफ़िज़ है।[14]

(3)

दर्जा बंदी और उसूल-ए-मुसावात

13 Sociology of Islam ,vol .i

14 Manchester Guardian Weekly, May 31st .1935

अगरचे क़ुरआन की नज़र में सब मुसलमान बराबर हैं और लिखा है कि,

إِنَّ أَكْرَمَكُمْ عِندَ اللَّهِ أَتْقَاكُمْ

“तुम में सबसे ज़्यादा बुज़ुर्ग अल्लाह के नज़्दीक वो है जो तुम में सबसे ज़्यादा मुत्तक़ी है।” (हुजरात आयत 140)

ताहम इब्तिदा ही से इस्लामी सोसाइटी में इस उसूल को नज़र-अंदाज कर दिया गया और दर्जा बन्दी मौजूद हो गई। रसूल अरबी की दुनियावी तरक़्क़ी और कामयाबी का ये नतीजा हुआ कि नस्ल के फ़ख़्र का ख़ातिमा होने के बजाय क़ुरैश के क़बाइल की कदो मंजिलत बढ़ गई और इस क़बीले का शख़्स दीगर तमाम क़बाइल के शुरफ़ा से ज़्यादा शरीफ़-उल-नसब (सबसे शरीफ अच्छा खानदानी) ख़्याल किया जाता था। जब इस्लाम ग़ैर-अरब ममालिक में फैला तो अरब अपने आपको ग़ैर-अरब से बरतर ख़्याल करने लगे। रसूल अरबी की वफ़ात के तीन (3) सदीयां बाद मवाली (मौला की जमा गुलाम, नौकर) की जमाअत बाक़ायदा क़ायम हो गई और लोग अपने नामों को तर्क करके अरबी नाम रखने लग गए और अपने लिए अरबी नसब नामे वज़ाअ करके अरब कहलाने लगे। इस दर्जा बंदी के सवाल ने शादी ब्याह के मुआमलात में अहम सूरत इख़्तियार कर ली। हज़रत मुहम्मद की वफ़ात के डेढ़ सौ (150) साल तक किसी मवाली को ये जुर्आत ना थी कि किसी ख़ालिस अरबी नज़ाद

(नस्ल) लड़की से ब्याह की दरख़्वास्त करे। हनफ़ी मज़्हब अरब और ग़ैर-अरब में मुसावात (बराबरी) के उसूल का क़ाइल नहीं।[15] शाफ़ई मज़्हब का भी यही वतीरा है। मुहाजिरीन और अंसार के ख़ानदानों की नसलें और बनू हाशिम के ख़ानदान (जो आँहज़रत के क़रीबी रिश्तेदार थे) की नसलें अपने आपको दीगर क़बाइल से बुलंद व बाला ख़्याल करती थीं। ख़ुलफ़ा-ए-अब्बासिया के ज़माने में उनके इस दाअवे को बिला चोन व चरा तस्लीम किया गया हालाँकि वो खलिफ़ा के वज़ीफ़ा-ख़्वार होते थे। लेकिन हक़ तो ये है कि,

گر نسب را جز ملت کردہ   رخنہ در کارِ اخوت کردہ

(4)

तबक़ा-ए-निसवां और उसूल-ए-मुसावात

औरात (औरत की जमा, ख़वातीन) के मुताल्लिक़ क़ुरआनी अहकाम मर्द और औरत की मुसावात (बराबरी) के उसूल के ख़िलाफ़ हैं, और इस्लामी ममालिक में औरतों की पस्त हालत के ज़िम्मा वार हैं। इस्लाम ने औरतों के लिए एक ख़ास हद मुक़र्रर कर दी है जिससे वो तजावुज़ नहीं कर सकतीं

---

15 Levy,Sociology of Islam. Vol.1

जिसका नतीजा औरात की जहालत तोहम परस्ती और क़ौम की तनज़्ज़ुली है क्योंकि क़ौम की तरक़्क़ी बेशतर उस की औरात पर मुन्हसिर होती है।

क़ुरआन में औरतों को ताकीद की गई है कि वो पर्दा किया करें (अहज़ाब 33:53-59 वग़ैरह) इस हुक्म के ख़िलाफ़ दौर-ए-हाज़रा के इस्लामी ममालिक के मुसलमान बग़ावत करते हैं। मसलन अख़्बार अल-जरिदह (اخبارالجریدہ) में एक मुसलमान तौफ़ीक़ दाइब कहता है :-

> "क्या तुम पर्दे के इसलिए हामी हो कि क़ुरआन में इस का हुक्म है? अगर ये बात है तो तुम क्यों एक हुक्म को मानते हो और दूसरों को ताक़ निस्यान (نسیان) पर रख देते हो। तुम क्यों शराबी और बे नमाज़ी को दुर्रे नहीं लगाते? तुम चोर के हाथ क्यों नहीं काटते और ज़िना कारों को संगसार क्यों नहीं करते?"

मिस्री आलिम मंसूर फ़हमी पर्दे के ख़िलाफ़ एक मुदल्लिल मक़ाला लिख कर कहता है कि :-

> **"पर्दे की रस्म रसूल अल्लाह के ज़माने से पहले राइज ना थी।"**

सूबा मद्रास के मजिस्ट्रेट मिस्टर मुही-उद्दीन साहब कहते हैं :-

> "हमको इस बात का फ़ख़्र है कि क़ुरआन में औरतों का दर्जा दीगर मज़ाहिब के मुक़ाबले में आला और बाला है। अगर ये दुरुस्त है तो हम क्यों उनको जानवरों की तरह पिंजरों में बंद रखते हैं?

> हम अपनी तादाद के निस्फ़ हिस्से को क़ैद करके रखते हैं और फिर अपनी क़िस्मत पर रोते हैं।"

कुछ अर्से का ज़िक्र है कि मिसिज़ हुसैन साहिबा ने बंगाल व यमन एजूकेशनल कान्फ्रेंस में उन इस्लामी पाबंदीयों का ज़िक्र करके मुसलमानों की ग़फ़लत-शिआरी, लापरवाही और मायूसकुन सुलूक पर इज़्हार-ए-अफ़सोस किया। इस ख़ातून ने पर्दे को ज़हरीली गैस के नाम से मौसूम किया और कहा :-

> "हमारी बहनें पर्दे के अंदर पर्दा-गैस से मर रही हैं, इस्लाम ने दुख़तर कुशी का ख़ातिमा किया था लेकिन ये ख़्याल नहीं किया जाता कि औरतों के **<u>"दिल और दिमाग़ को मारा जा रहा है।"</u>**

हिन्दुस्तान में पर्दे के ख़िलाफ़ हर तरफ़ से सदा-ए-एहतिजाज इस क़द्र बुलंद हो रही है कि मरहूम शिबली लिखते हैं :-

> "यूरोप के आमियाना तक़्लीद ने मुल्क में जो नए मुबाहिस पैदा कर दिए हैं उनमें एक पर्दे का मसअला भी है। दावा किया जाता है कि ख़ुद मज़्हब इस्लाम में पर्दे का हुक्म नहीं और इस से बढ़कर ये कि क़ुरुन-इ-ऊला में पर्दे का रिवाज ना था।..... इस मौक़े पर इबरत के क़ाबिल ये अम्र है कि इस्लाम की तारीख़ और इस्लाम की ताबीर करने वाले दो गिरोह हो सकते थे। उलमाए क़दीम और जदीद ताअलीम याफ़ता, उलमा का ये हाल है कि उनको ज़माने की मौजूदा ज़बान में बोलना नहीं आता। जदीद ताअलीम याफ़्ता लोगों के मुबल्लिग़-ए-इल्म का नए ताअलीम

याफ़्ता गिरोह के सबसे मशहूर और मुस्तनद मुसन्निफ़ मौलवी अमीर अली की इस इबारत से अंदाज़ा हो सकता है जो अभी ऊपर गुज़र चुकी। लेकिन बदक़िस्मती से यही दूसरा गिरोह क़ौमी लिटरेचर पर क़ब्ज़ा करता जाता है और चूँकि ग़ैर-क़ौमों के कानों में सिर्फ इसी गिरोह की आवाज़ पहुँचती है इसलिए मसाइल और तारीख़ इस्लाम के मुताल्लिक़ आइंदा ज़माने में **इसी गिरोह की आवाज़ इस्लाम की आवाज़ समझी जाएगी।"**

(मक़ालात शिबली सफ़ा 105)

(5)

अय्याम-ए-जाहिलियत में औरतों की हालत ना-गुफ़्ता बह (शर्मनाक) थी। इस्लाम ने उस हालत को किसी क़द्र बेहतर बना दिया। लेकिन हमको अय्याम-ए-जाहिलियत और इस्लाम का मुवाज़ना और मुक़ाबला करना मक़्सूद नहीं बल्कि हमको ये देखना है कि आया इस्लाम में तबक़ा निसवां (औरतों के तबक़े) की हैसियत ऐसी है कि वो बमुक़ाबला मसीहीय्यत एक आलमगीर मज़्हब होने की सलाहीयत रख सके? अय्याम-ए-जाहिलियत में ये दस्तूर था कि ब्याह के लिए औरतें ख़रीदी जाती थीं।[16] ज़र महर दुल्हन को दिया जाता

16 Sociology of Islam.vol.1

था और औरत शौहर का माल मुतसव्वर होती थी, इस्लाम में ये क़ानून बहाल रखा गया। चुनान्चे क़ुरआन में वारिद है कि :-

وَاٰتُوا النِّسَآءَ صَدُقٰتِهِنَّ نِحْلَةً

“औरतों को उनके महर ख़ुशी से दो।” (निसा आयत 4)

इस ज़र महर को अदा करने की वजह से औरतें आदमीयों की निस्बत कम दर्जा ख़्याल की जाती हैं चुनान्चे क़ुरआन में है कि :-

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ وَّبِمَآ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ فَالصّٰلِحٰتُ قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَيْبِ بِمَا حَفِظَ اللّٰهُ وَالّٰتِيْ تَخَافُوْنَ نُشُوْزَهُنَّ فَعِظُوْهُنَّ وَاهْجُرُوْهُنَّ فِي الْمَضَاجِعِ وَاضْرِبُوْهُنَّ فَاِنْ اَطَعْنَكُمْ فَلَا تَبْغُوْا عَلَيْهِنَّ سَبِيْلًا اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيًّا كَبِيْرًا

“मर्द औरतों पर हाकिम हैं इसलिए कि अल्लाह ने एक को एक पर फ़ज़ीलत बख़्शी है और इसलिए भी कि मर्दों ने औरतों पर अपना माल ज़र महर और नान व नफ़्का (खाना व ज़रुरियात) ख़र्च किया है। पस नेक-बख़्त औरतें अपने शौहरों की इताअत करती हैं।” अलीख देखो तर्जुमा नज़ीर अहमद (निसा आयत 34)

इस आयत पर डाक्टर अब्दुल हकीम साहब अपनी तफ़्सीर-उल-क़ुरआन में लिखते हैं :-

"एक हदीस शरीफ़ में वारिद है कि हज़रत ने फ़रमाया कि अगर मैं किसी को दूसरे शख़्स को सज्दा करने का हुक्म देता तो औरत के लिए ये हुक्म करता कि वो अपने ख़ावंद (शौहर) को सज्दा किया करे। इस्लाम में सज्दा करना इंतिहा दर्जे की ज़िल्लत और दूसरे की आला दर्जा की अज़मत ज़ाहिर करना है और अपनी सारी ताक़तों और कुव्वतों से उस के आगे झुक जाना होता है तो गोया इस का दूसरे अल्फ़ाज़ में ये मतलब है कि औरत पर इस दर्जे की ताबेदारी और ख़िदमत गुज़ारी अपने ख़ावंद के लिए वाजिब है जो दूसरे किसी शख़्स के लिए वाजिब नहीं।"

(सफ़ा 367)

पस क़ुरआन के मुताबिक़ औरतें पस्त दर्जे की हैं चुनान्चे साफ़ लिखा है कि :-

وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ

"मर्दों का औरतों के ऊपर दर्जा है।" (बक़रह आयत 228)

बुत-परस्ती के ख़िलाफ़ क़ुरआन ये दलील लाता है :-

أَفَرَءَيْتُمُ اللَّٰتَ وَالْعُزَّىٰ وَمَنَوٰةَ الثَّالِثَةَ الْأُخْرَىٰ أَلَكُمُ الذَّكَرُ وَلَهُ الْأُنثَىٰ

"भला तुम देखो तो लात व उज्ज़ा और मनात और तीसरी देवी मनात। ये तो बे इंसाफ़ी की तक़्सीम है कि तुम्हारे लिए लड़के हों और अल्लाह के लिए लड़कीयां हों?" (सूरह नज्म आयत 19-21)

इस दलील की बुनियाद ये है कि अल्लाह ने लड़कों को लड़कीयों पर फ़ज़ीलत बख़्शी है। लड़कीयां कम दर्जे की हैं तुम अल्लाह के लिए लड़कीयां और अपने लिए लड़के तज्वीज़ (पसंद) करते हो। ये बड़ी बे इंसाफ़ी है। फिर लिखा है :-

إِنَّ الَّذِينَ لَا يُؤْمِنُونَ بِالْآخِرَةِ لَيُسَمُّونَ الْمَلَائِكَةَ تَسْمِيَةَ الْأُنثَىٰ

“जो लोग आख़िरत पर ईमान नहीं रखते वो फ़रिश्तों के नाम औरतों के से नाम रखते हैं।” (नज्म आयत 27)

विरसे के मुआमले में **“मर्द का हिस्सा दो औरतों के बराबर है।” (निसा आयत 11)**

शहादत के मुआमले में दो औरतों की शहादत एक मर्द की शहादत के बराबर है। (बक़रह आयत 282)

क़ुरआन में कहीं उन शराइत का ज़िक्र नहीं जिनके मातहत मर्द औरत को तलाक़ दे जिसका मतलब ये है कि मर्द को इख़्तियार कुल्ली (पूरी तरह) हासिल है कि औरत को माक़ूल और ना-माक़ूल वजूह (वजह की जमा) की बिना पर तलाक़ दे दे।

وَإِنْ عَزَمُوا الطَّلَاقَ فَإِنَّ اللَّهَ سَمِيعٌ عَلِيمٌ

“और अगर तलाक़ का इरादा कर लें, तो भी ख़ुदा सुनता (और) जानता है।” (सूरह बक़रह आयत 227)

लेकिन किसी औरत को ये हक़ हासिल नहीं कि अपने शौहर को माक़ूल बिना पर भी तलाक़ दे सके।

क़ुरआन शौहर को इजाज़त देता है कि अपनी बीवी को मारे पीटे। चुनान्चे लिखा है :-

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ وَّ بِمَآ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ فَالصّٰلِحٰتُ قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَيْبِ بِمَا حَفِظَ اللّٰهُ وَالّٰتِيْ تَخَافُوْنَ نُشُوْزَهُنَّ فَعِظُوْهُنَّ وَاهْجُرُوْهُنَّ فِي الْمَضَاجِعِ وَاضْرِبُوْهُنَّ فَاِنْ اَطَعْنَكُمْ فَلَا تَبْغُوْا عَلَيْهِنَّ سَبِيْلًا اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيًّا كَبِيْرًا (۳۴)

“जो औरतें ऐसी हों कि तुमको उनकी बद-दिमागी का एहतिमाल हो तो उनको ज़बानी नसीहत करो और उनको उनकी ख़्वाब-गाहों में अकेले छोड़ दो और उनको पीटो।”....अलीख। (निसा आयत 34)

लेकिन अगर औरतें अपने मर्दों की बदखूई से लर्ज़ां और तरसाँ हों तो वो ग़रीब कुछ नहीं कर सकतीं।

ज़िना की सज़ा ये साबित करती है कि मन्कूहा (शादी-शुदा) औरत अपने ख़ावंद (शौहर) का माल है। चुनान्चे अगर कोई मन्कूहा (शादी-शुदा) औरत ज़िनाकारी की मुर्तक़िब हो तो ज़ानी और ज़ानिया की सज़ा संगसारी है लेकिन

अगर औरत ने ब्याह ना किया हो तो उस की सज़ा सौ (100) दुर्रे (कोड़े) हैं। इस तमीज़ की वजह ये है कि मन्कूहा (शादी-शुदा) औरत अपने ख़ावंद (शौहर) का माल शुमार की जाती है लेकिन कुँवारी औरत किसी का माल नहीं होती।[17]

औरतें ना सिर्फ मर्दों से कम दर्जा रखती हैं बल्कि वो मर्दों की आला शहवत हैं। चुनान्चे क़ुरआन में है कि :-

نِسَآؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ فَأْتُوا حَرْثَكُمْ أَنَّىٰ شِئْتُمْ وَقَدِّمُوا لِأَنفُسِكُمْ

"तुम्हारी बीवीयां तुम्हारी <u>खेतियाँ</u> हैं सो तुम <u>अपनी खेती में जिस तरह चाहो आओ।"</u> (बक़रह आयत 223)

अय्याम-ए-जाहलीयत में ब्याह का एक दस्तूर[18] ये था कि महर देकर ब्याह लेने की बजाय मुताअ (शीया मज़्हब में कुछ मुद्दत के लिए औरत से निकाह कर लेना) कर लेते थे। इस का मक़्सद ख़ानदान का क़ियाम और बच्चों की पैदाइश और परवरिश ना थी, बल्कि ये था कि जब आदमी अपने घर से बाहर जंग के लिए या किसी और मतलब के लिए जाये तो किसी औरत के वसीले मुक़र्ररी अय्याम (दिनों) के लिए अपनी नफ़्सानी ख़्वाहिशात की आग को फ़िरौ कर (बुझाना) ले और ऐसा निकाह मुर्दा और औरत दोनो की रजामंदी पर मौक़ूफ़ होता था और इस में किसी दर्मियानी या वली या औरत की किसी

17 Sociology of Islam,vol.1

18 Ibid vol.1

रिश्तेदार की ज़रूरत ना होती थी। मुक़र्ररा अय्याम (तय शुदा दिनों) के बाद उज्रत (मजदूरी) पाने पर औरत का मर्द से किसी क़िस्म का ताल्लुक़ ना रहता। इस क़िस्म का ब्याह क़ुरआन में भी जायज़ क़रार दिया गया है। चुनान्चे लिखा है :-

نِسَآؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ فَأْتُوا حَرْثَكُمْ أَنَّىٰ شِئْتُمْ وَقَدِّمُوا لِأَنفُسِكُمْ

"वो सब औरतें तुमको हलाल हैं जिनको तुम माल देकर तलब करो। उन औरतों में से जिससे तुमने ख़त उठाया है उनकी मुक़र्ररा उज्रत (मज्दुरी) दे दो।" (निसा आयत 23)

ज़रबत हैदरिया में क़ातेअ दलाईल से ये साबित किया गया है कि ये आयत मुताअ (متعہ) पर नस (क़ुरान-ए-पाक की वो आयतें जो साफ़ और सरीह हों) है। इस क़िस्म के निकाह और ज़िनाकारी में इतना कम फ़र्क़ है कि हदीस में आया है कि रसूलुल्लाह ने इस निकाह को हराम क़रार दे दिया था। लेकिन जिस तरह तफ़्सीर सअलबी (تفسیر ثعلبی) में मन्क़ूल है कि :-

> "इमरान बिन हुसैन कहता है कि आयत मुताअ (متعہ) किताब अल्लाह में नाज़िल हुई और इस आयत के नाज़िल होने के बाद कोई दूसरी आयत नाज़िल नहीं हुई जिसने इस आयत को मंसूख़ किया हो।"

पस क़ुरआन में **मुताअ (متعه)** की मुमानिअत का ज़िक्र नहीं। लेकिन मुताअ (متعه) की इजाज़त का ज़िक्र है। अगर क़ुरआन में मुताअ की निस्बत सरीह आयत वारिद ना होती तो अब्दुल्लाह बिन मसऊद सा क़ुरआन दान मुताअ पर क्यूँ-कर इसरार कर सकता था? अगर आँहज़रत ने अपनी हीन हयात (जीते जी) में मुताअ को हराम किया होता तो ख़लीफ़ा अव्वल के अहद में वो किस तरह हलाल हो गया? ख़लीफ़ा उमर ने अपनी ख़िलाफ़त के निस्फ़ में मुताअ को बंद किया। ख़लीफ़ा मामूं ने मुताअ को दुबारा जारी किया लेकिन चूँकि राय आम्मा इस क़िस्म के निकाह के ख़िलाफ़ थी उसने अपने हुक्म को वापिस ले लिया। अहले सुन्नत मुताअ को हराम क़रार देते हैं लेकिन इस को हराम ठहराना क़ुरआन और तारीख़ का इन्कार करना है।

(6)

क़ुरआन ने औरात (औरतों) की हैसियत को यहां तक पस्त कर दिया है कि बहिश्त में भी उन जिस्मानी जज़्बात को रवा रखा है जो इस दुनिया में मर्दूद और मतऊन (बदनाम) शुमार किए जाते हैं। अहले जन्नत को وَلَهُمْ فِيهَا أَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ **सुथरी औरतें मिलेंगी** (बक़रह आयत 23 आले-इमरान आयत 13, निसा आयत 60)

كَذٰلِكَ ۚ وَزَوَّجْنٰهُمْ بِحُوْرٍ عِيْنٍ (٥٤)

وَزَوَّجْنٰهُمْ بِحُوْرٍ عِيْنٍ (٢٠)

وَحُوْرٌ عِيْنٌ (٢٢)

“गोरे रंग की बड़ी बड़ी आँखों वाली औरतें जैसे छिपे हुए मोती।”

(दुखान आयत 54, तूर आयत 20, वाक़िया आयत 22)

حُوْرٌ مَّقْصُوْرٰتٌ فِى الْخِيَامِ (٧٢) لَمْ يَطْمِثْهُنَّ اِنْسٌ قَبْلَهُمْ وَلَا جَآنٌّ (٧٤) مُتَّكِـِٕيْنَ عَلٰى رَفْرَفٍ خُضْرٍ وَّعَبْقَرِيٍّ حِسَانٍ (٧٦)

“वो ख़ेमों में रुकी बैठी हैं और उनसे, पहले कोई आदमी और जिन्न उनसे हम-बिस्तर नहीं हुआ। सब्ज़ चांदियों और क़ीमती क़ालीनों पर तकिया लगाए बैठी हैं।” (रहमना आयत 72, 74, 76)

وَعِنْدَهُمْ قٰصِرٰتُ الطَّرْفِ عِيْنٌ (٤٨) كَاَنَّهُنَّ بَيْضٌ مَّكْنُوْنٌ (٤٩)

“वो फ़राख़ चश्म वाली नीची निगाह वाली हम-उम्र औरतें होंगी गोया वो छिपे हुए अंडे हैं।” (साफ़्फ़ात आयत 48-49)

وَّفُرُشٍ مَّرْفُوْعَةٍ (٣٤) اِنَّآ اَنْشَاْنٰهُنَّ اِنْشَآءً (٣٥) فَجَعَلْنٰهُنَّ اَبْكَارًا (٣٦) عُرُبًا اَتْرَابًا (٣٧)

“उन औरतों को हमने (ख़ुदा ने) एक उठान पर उठाया है। फिर हम ने उनको कुंवारियां बनाया। शौहरों की प्यारी हम-उम्र बनाया।” (वाक़िया आयत 34-37)

इस जन्नत में इन हूरों के इलावा ग़िल्मान (غلمان) भी मौजूद हैं

وَيَطُوفُ عَلَيْهِمْ غِلْمَانٌ لَّهُمْ كَأَنَّهُمْ لُؤْلُؤٌ مَّكْنُونٌ (٢٤)

“आस-पास जवान लड़के फिरते हैं गोया वो छिपे हुए मोती हैं।”

(तूर आयत 24, वाक़िया आयत 17)

इस बहिश्त में पानी, दूध, शहद और शराब की नहरें बहती हैं। (मुहम्मद आयत 15) वहां तख़्त प्याले चांदनीयाँ, क़ालीन फ़र्श वग़ैरह सब मुहय्या हैं (हिज्र आयत 47, वाक़िया आयत 15, 34, दहर 12 ता 22, ग़ाशिया आयत 10-16) वहां मेवे और फल हैं। (बक़रह आयत 25, यासीन आयत 57, साफ़्फ़ात आयत 42 वग़ैरह) ख़ोशे लटकते हैं। (रहमना आयत 48 वग़ैरह) वहां सफ़ैद शराब और अन्वाअ व अक़्साम के शर्बतों के पियालों का दौर चलेगा। (साफ़्फ़ात आयत 42-46, तूर आयत 20-23, वाक़िया आयत 18-20) अहले जन्नत को सोने चांदी के कंगन, रेशमी लिबास और मोती पहनाए जाऐंगे (कहफ़ आयत 20, हज आयत 23, फ़ातिर आयत 33, दुख़ान आयत 53) उनको परिंदों का गोश्त जिस क़िस्म का वो चाहेंगे मिलेगा। (तूर आयत 22, वाक़िया आयत 21) ग़रज़ ये कि क़ुरआन के मुताबिक़ बहिश्त एक इशरत कदा (ऐश व इशरत करने का मुक़ाम) है जिसमें हर क़िस्म की नफ़्सानी ख़्वाहिशात पूरी की जाती हैं।

चहार चीज़ कि ग़म मै बुर्द कुदाम चहार

शराब व सब्ज़ व आब-ए-रवान व रुए निगार

چہار چیز کہ غم مے برد کدام چہار؟
شراب وسبز وآبِ روان وروئے نگار

क़ुरआनी बहिश्त में ये सब और बहुत सी दूसरी ऐश व इशरत की चीज़ें मौजूद हैं। इस की वजह मौलाना नियाज़ फ़त्हपूरी ये बताते हैं कि :-

> "अरब के लोग औरत, शहद, दूध, सोना, चांदी, जवाहरात वग़ैरह पर जान देते थे। उनके नज़्दीक इन इश्याय (चीजों) से ज़्यादा कोई चीज़ महबूब थी ही नहीं इसलिए अगर उनकी तर्ग़ीब के लिए सिर्फ ये कह दिया जाता कि अच्छे कामों का बदला एक रुहानी मसर्रत की सूरत में पाया जाएगा तो वो बिल्कुल इस को ना समझते और कभी अच्छे कामों की तरफ़ माइल ना होते। कलाम मजीद ने भी उमूमन वही अंदाज़-ए-बयान इख़्तियार किया जिसको लोग समझ सकते थे।" (रिसाला निगार बाबत जुलाई 1928 ई॰)

लेकिन आलमगीर मज़्हब का ये काम नहीं है कि लोगों के बेलगाम इरादों को इल्हाम की सूरत में दिल-फ़रेब अल्फ़ाज़ में अदा करे बल्कि उस का ये फ़र्ज़ है कि लोगों के ख़यालात तसव्वुरात जज़्बात और अफ़आल को सुधारे और उनकी क़ुव्वत-ए-मुतख़य्युला (सोचने की क़ुव्वत) को सिरात मुस्तक़ीम (सीधी राह) की तरफ़ चलाए। जन्नत की क़ुरआनी तस्वीर ये बात साबित

करती है कि इस्लाम सिर्फ़ अहले अरब के लिए था और इस में आलमगीर होने की सलाहीयत ही नहीं।

(7)

आलमगीर मज़्हब मर्द और औरत दोनो के हुक़ूक़ की यकसा हिफ़ाज़त करता है और सिनफ़ नाज़ुक (औरतों का तबक़े) की सही क़द्र व मंज़िलत करता है। इस अम्र में क़ुरआन और इस्लाम की ताअलीम मसीहीय्यत के मुक़ाबले में क़ासिर रहती है। हमने अपनी किताब **"दीन फ़ित्रत, इस्लाम या मसीहीय्यत?"** की फ़स्ल सोम व चहारम में ये साबित कर दिया है कि अक़्वाम की शाइस्तगी और तहज़ीब का मेयार इज़्दिवाज के क़वानीन और क़वाइद हैं जिन अक़्वाम में वहदत-ए-इज़्दिवाज (एक ही बीवी से निकाह) है और इस रिश्ता के क़ियाम व बक़ा पर ज़ोर दिया जाता है वो अक़्वाम शाहराह-ए-तरक़्क़ी पर गामज़न होती हैं। लेकिन जिन अक़्वाम में कस्रत इज़्दिवाज (एक से ज्यादा निकाह या बीवी रखने का दस्तूर) मुरव्वज है और तलाक़ की इजाज़त है उनमें ज़वाल पैदा हो जाता है। इस बात से कोई सही-उल-अक़्ल शख़्स इन्कार नहीं कर सकता कि क़ुरआन ने कस्रत इज़्दवाजी की इजाज़त दे रखी है। चुनान्चे सूरह निसा में है :-

وَاِنۡ خِفۡتُمۡ اَلَّا تُقۡسِطُوۡا فِی الۡیَتٰمٰی فَانۡکِحُوۡا مَا طَابَ لَکُمۡ مِّنَ النِّسَآءِ مَثۡنٰی وَ ثُلٰثَ وَ رُبٰعَ ۚ فَاِنۡ خِفۡتُمۡ اَلَّا تَعۡدِلُوۡا فَوَاحِدَۃً اَوۡ مَا مَلَکَتۡ اَیۡمَانُکُمۡ ؕ ذٰلِکَ اَدۡنٰۤی اَلَّا تَعُوۡلُوۡا (۳)

"औरतों में से जो तुमको पसंद आएं दो-दो तीन-तीन चार-चार निकाह में लाओ और अगर ये ख़ौफ़ हो कि अदल क़ायम ना रख सकोगे तो एक ही निकाह करो या वो (बांदियां) <u>जो तुम्हारे हाथों का माल हों।"</u> (निसा आयत 3)

इन चार निकाहों के इलावा एक मुसलमान ला-तादाद (बेशुमार) लौंडियां और बांदियां रख सकता है जिस तरह ऊपर की आयत में मज़्कूर है फिर लिखा है कि :-

یٰۤاَیُّهَا النَّبِیُّ اِنَّاۤ اَحۡلَلۡنَا لَکَ اَزۡوَاجَکَ الّٰتِیۡۤ اٰتَیۡتَ اُجُوۡرَهُنَّ وَ مَا مَلَکَتۡ یَمِیۡنُکَ مِمَّاۤ اَفَآءَ اللّٰهُ عَلَیۡکَ وَ بَنٰتِ عَمِّکَ وَ بَنٰتِ عَمّٰتِکَ وَ بَنٰتِ خَالِکَ وَ بَنٰتِ خٰلٰتِکَ الّٰتِیۡ هَاجَرۡنَ مَعَکَ ۫ وَ امۡرَاَۃً مُّؤۡمِنَۃً اِنۡ وَّهَبَتۡ نَفۡسَهَا لِلنَّبِیِّ اِنۡ اَرَادَ النَّبِیُّ اَنۡ یَّسۡتَنۡکِحَهَا ۫ خَالِصَۃً لَّکَ مِنۡ دُوۡنِ الۡمُؤۡمِنِیۡنَ ؕ قَدۡ عَلِمۡنَا مَا فَرَضۡنَا عَلَیۡهِمۡ فِیۡۤ اَزۡوَاجِهِمۡ وَ مَا مَلَکَتۡ اَیۡمَانُهُمۡ لِکَیۡلَا یَکُوۡنَ عَلَیۡکَ حَرَجٌ ؕ وَ کَانَ اللّٰهُ غَفُوۡرًا رَّحِیۡمًا (۵۰)

"ऐ नबी हमने तेरे लिए तेरी औरतें हलाल कर दीं जिनका महर तू दे चुका है और वो (लौंडियां) जो तेरे हाथ का माल है। <u>जो खुदा ने तेरे हाथ लगवा दिया है।"</u> अलीख (अह्ज़ाब आयत 50)

अहले इस्लाम को इजाज़त है कि वो अपनी बांदियों (लोंडियों) के सामने अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त ना करें। चुनान्चे क़ुरआन में लिखा है :-

“वो जो अपनी शहवत की जगह को थामते हैं मगर अपनी औरतों पर या अपने हाथ के माल पर, सौ उन पर इल्ज़ाम नहीं।” अगर शादीशुदा औरात “तुम्हारे हाथ की मिल्कियत हो जाएं।” (निसा आयत 28)

तो वो भी हरम में दाख़िल हो सकती हैं। इन लौंडियों और बांदियों की कोई हद मुक़र्रर नहीं की गई। अगर किसी मर्द मुसलमान के हाथ एक हज़ार लौंडियां लग जाएं तो वो उनको अपनी मदख़ूला (वो औरत जिसे घर में डाल लिया हो। वो औरत जिससे सोहबत की गई हो बना कर और अपनी चार बीवीयों पर इज़ाफ़ा करके क़ुरआन से बाहर नहीं जाता। दुनिया-ए-इस्लाम में इसी वजह से बेशुमार तलाक़ दिए जाते हैं। और इसके मुक़तदियों और पेशवाओं ने यही दस्तूर-उल-अमल अपने पेश-ए-नज़र रखा। चुनान्चे तारीख़-उल-खुलफ़ा मुसन्निफ़ अल्लामा जलाल उद्दीन सिवती में लिखा है कि :-

> “इब्ने सअद ने अली बिन हुसैन से रिवायत की कि इमाम हसन औरतों को तलाक़ बहुत दिया करते थे। सिवा उस के जिनको आपसे मुहब्बत हो जाती। आपने नव्वे (90) औरतों से निकाह किए थे।.... चूँकि हज़रत हसन आम तौर पर निकाह करके तलाक़ दे दिया करते थे इसलिए ख़तरा पैदा हो गया था कि कहीं क़बाइल में अदावत ना पड़ जाये। इसलिए हज़रत अली करम अल्लाह वजहु को अहले कूफ़ा से कहना पड़ा कि तुम मेरे बेटे हसन को लड़कीयां ना दो, वो तलाक़ बहुत दिया करते थे।..... इब्ने सअद ने अब्दुल्लाह बिन सअद से रिवायत की है कि हज़रत हसन ज़्यादा निकाह करने वाले ख़्याल के आदमी थे और हमें ब-वक़्त

> निकाह बहुत कम इत्तिफ़ाक़ मौजूदगी का हुआ है और बहुत कम ऐसी मन्कूहा (निकाह की गई) औरतें आपकी थीं जिनसे आपको मुहब्बत व उल्फ़त थी।" (सफ़ा 131)

"लेकिन कस्रत इज़्दवाजी (बहुत सी औरतों) के बावजूद हज़रत इमाम साहब ने शरीअत मुहम्मदिया का कभी उदूल (खिलाफवर्ज़ी) ना किया और एक वक़्त में चार (4) से ज़्यादा बीवीयां ना रखीं। **इसी तरह ख़लीफ़ा मुतवक्किल की चार हज़ार (4000) कनीज़ें थीं और वो उनमें से हर एक से फ़ायदा उठा चुका था।" (तारीख़-उल-खुलफ़ा सफ़ा 235)** कलकत्ता के माडर्न रिव्यू बाबत जनवरी 1934 ई॰ में लिखा है कि :-

> "शाह इब्ने सऊद ने ताहाल **<u>एक सौ पच्चास (150)</u>** अज़्वाज से निकाह किया है गो शराअ (शरीअत) इस्लाम के मुताबिक़ चार से ज़ाइद बीवीयां बैयक वक़्त (एक ही वक़्त) नहीं कीं।"

पस ये कहना ऐन हक़ है कि क़ुरआन व इस्लाम की रु से मर्दों को इख़्तियार हासिल है कि वो जिस क़द्र औरतें अपनी हरम सराय में दाख़िल करना चाहे कर ले। उनमें अदल वग़ैरह किसी क़िस्म की हक़ीक़ी क़ैद नहीं है।

अख़्बार "हमदर्द" देहली के ऐडीटर मरहूम मौलाना मुहम्मद अली थे। इस अख़्बार की इशाअत 10 अप्रैल 1925 ई॰ में एक साहब "मकतूब-ए-फ़रंग" के ज़ेर-ए-उनवान यूं रक़मतराज़ हैं :-

> "तुर्कों ने जिस दिन से तादाद इज़्दिवाज को क़ानूनी पाबंदीयों से रोका है मुझे उनके मुहज़्ज़ब मुतमद्दिम और तरक़्क़ी याफ्ताह होने का यक़ीन हो चला है। कम अज़ कम मैं तो ज़ाती तौर पर यक़ीन नहीं करता कि इस्लाम ने पूरी आज़ादी के साथ तादाद इज़्दिवाज इस तरह जारी किया हो जिस तरह अब हिन्दुस्तान के उलमा किराम इस को अपने और दूसरों के लिए जायज़ फ़रमाते हैं। मैं तो ज़ाती तौर पर इस के ख़िलाफ़ अक़ीदा रखता हूँ और अमली तौर पर ख़ुद ऐडीटर हमदर्द भी मेरे अक़ाइद से दूर नहीं हैं सिर्फ फ़र्क़ ये है कि मैं कहता हूँ कि मौजूदा हालात में तादाद इज़्दिवाज एक जुर्म क़बीह **(नामुनासिब)** है और वो कुछ कहते नहीं **हंस कर ख़ामोश हो जाते हैं"**

पस इस रोशन ख़्याल मुसलमान के मुताबिक़ क़ुरआनी इजाज़त "मौजूदा हालात" के लिए मौज़ूं (सहीह) नहीं और "एक जुर्म-ए-क़बीह" है। लिहाज़ा बीसवीं (20) सदी के रोशन दिमाग़ मुसलमानों की ख़ातिर ये कोशिश की जाती है कि किसी तरह तावीलें करके कस्रत-ए-इज़्दवाजी के बदनुमा धब्बे को क़ुरआन से मिटा या जाये।

हमने इन तावीलात पर अपनी किताब ***"दीन फ़ित्रत, इस्लाम या मसीहीय्यत?"*** की फ़स्ल सोम व चहारम में शरह और बस्त के साथ बहस की है। नाज़रीन से दरख़्वास्त है कि वो इस किताब का मुतालआ करके ख़ुद ये

फ़ैसला कर लें कि आया औरात का जो दर्जा क़ुरआन व इस्लाम में है वो उसूल-ए-मुसावात के नक़ीज़ (उलट, बरअक्स) है या कि नहीं?

फ़स्ल पंजुम

उसूल-ए-इबादत

ख़ुदा की इबादत के उसूल पर नज़र करो तो यही नतीजा मुस्तंबित (चुना गया) होता है कि मसीहीय्यत आलमगीर मज़्हब है, और इस्लाम क़ौम अरब का मज़्हब है।

आदाब व तर्ज़-ए-इबादत की निस्बत सय्यदना ईसा मसीह ने फ़रमाया है कि **"ख़ुदा रूह है और ज़रूर है कि उस के परस्तार रूह और सच्चाई से उस की परस्तिश करें।" (यूहन्ना 4:24)** "हमारी रसाई बाप (परवरदिगार के पास एक ही रूह में होती है।" (इफ़िसियों 2:18) "हम हैं जो ख़ुदा की रूह की हिदायत से इबादत करते हैं।" (फिलिप्पियों 3:3) ख़ुदावंद ख़ुदा सबसे जो उस को पुकारते हैं नज़्दीक है। उन सबसे जो सच्चाई से उसे पुकारते हैं।" (ज़बूर 145:18) फिर औक़ात-ए-इबादत (इबादत के वक्तों) की निस्बत इंजीली हिदायत है कि **"हर वक़्त और हर तरह से रूह में दुआ और मिन्नत करते रहो।" (इफ़िसियों 6:18)** "दुआ मांगने में मशग़ूल और शुक्रगुज़ारी के साथ उस में बेदार रहो।" (कुलस्सियों 4:2) "हर वक़्त दुआ मांगते रहना और हिम्मत ना हारनी चाहिए। (लूक़ा 18:1) "हर वक़्त जागते और दुआ मांगते रहो।" (लूक़ा

21:36) “दुआ मांगने में मशग़ूल रहो” (रोमीयों 12:12) “बिलानागा दुआ माँगो” (थिस्सलुनीकियों 5:17)

जाये इबादत की निस्बत कलिमतुल्लाह ने अपनी ज़बान-ए-मोअजिज़ा बयान से फ़रमाया, **“तुम ना तो इस पहाड़ पर ख़ुदावंद ख़ुदा की परस्तिश करोगे और ना यरूशलेम में।..... सच्चे परस्तार बाप (परवरदिगार) की परस्तिश रूह और सच्चाई से करेंगे। क्योंकि परवरदिगार अपने लिए ऐसे ही परस्तार ढूंढता है।” (यूहन्ना 4:23)** “हर कोई अपनी जगह में उस की परस्तिश करेंगे।” (सफ़नियाह 2:11) “आफ़्ताब के तुलूअ से उस के ग़ुरूब तक मेरा नाम अक़्वाम के दर्मियान बुज़ुर्ग होगा। और हर मकान पर मेरे नाम के हदिये गुज़राने जाऐंगे।” (मलाकी 1:11) **“मैं चाहता हूँ कि इन्सान हर जगह बग़ैर ग़ुस्से और तकरार के पाक हाथों को उठा कर दुआ मांगा करें।” (1_तीमुथियुस 2:8)** “ख़ुदा ने दुनिया और उस की सारी चीज़ों को पैदा किया। वो आस्मान और ज़मीन का मालिक हो कर हाथ के बनाए हुए मंदिरों में नहीं रहता।” (आमाल 17:24) “बारी तआला हाथ के बनाए हुए घरों में नहीं रहता। चुनान्चे नबी कहता है कि ख़ुदावंद ख़ुदा फ़रमाता है कि आस्मान मेरा तख़्त है और ज़मीन मेरे पांव की चौकी है तुम मेरे लिए कैसा घर बनाओगे, या मेरी आरामगाह कौनसी है। (आमाल 7:48-49) **“जब तुम दुआ माँगो तो मुनाफ़िक़ों की मानिंद ना बनों। क्योंकि वो इबादत ख़ानों में और बाज़ारों के मोड़ूँ (चौराहों) पर खड़े हो कर**

दुआ माँगना पसंद करते हैं। मगर जब तुम दुआ माँगो तो अपनी कोठड़ी (खोली) में जाओ और दरवाज़ा बंद करके अपने परवरदिगार से जो पोशीदगी में है दुआ माँगो'।" (मत्ती 6:5-7)

अब हर शख़्स देख सकता है कि इबादत के ये उसूल आलमगीर हैं। ख़ुदा की परस्तिश रूह और सच्चाई से करनी चाहिए। इबादत के लिए कोई ख़ास औक़ात (वक़्त) मुक़र्रर नहीं। और ना कोई जगह मुक़र्रर है। हर वक़्त और हर जगह इन्सान अपने आस्मानी बाप की तरफ़ रुजू कर सकता है। ज़मान व मकान की क़ुयूद कहीं नहीं हैं।

(2)

बरअक्स इस के क़ुरआन मजीद में इस्लामी आदाब-ए-इबादत में ज़मान व मकान की क़ुयूद (क़ैद) मौजूद हैं जो हमारे दाअवे की मुसद्दिक़ हैं कि इस्लाम आलमगीर नहीं बल्कि आँहज़रत के हम-वतन अरबों के लिए था।

चुनान्चे क़ुरआन में आदाब इबादत की निस्बत आया है :-

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقْرَبُوا الصَّلٰوةَ وَ اَنْتُمْ سُكٰرٰى حَتّٰى تَعْلَمُوْا مَا تَقُوْلُوْنَ وَ لَا جُنُبًا اِلَّا عَابِرِيْ سَبِيْلٍ حَتّٰى تَغْتَسِلُوْا وَاِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى اَوْ عَلٰى سَفَرٍ اَوْ جَآءَ اَحَدٌ مِّنْكُمْ

مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ النِّسَآءَ فَلَمْ تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا طَيِّبًا فَامْسَحُوْا بِوُجُوْهِكُمْ وَاَيْدِيْكُمْ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا غَفُوْرًا (۴۳)

"मुसलमानो तुम नमाज़ के पास बहालत जनाबत मत जाओ जब तक ग़ुस्ल ना कर लो। अलबत्ता अगर मुसाफ़िरत में हो तो मज़ाइक़ा नहीं। और अगर तुम बीमार या मुसाफ़िर हो या कोई तुम में से पाख़ाने से आया हो या तुमने औरतों को हाथ लगाया हो और तुम्हें पानी ना मिले तो पाक मिट्टी से तयम्मुम करो। फिर अपने मोनाओं और हाथों पर मस्ह कर लिया करो।" अलीख (निसा आयत 43)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اِذَا قُمْتُمْ اِلَى الصَّلٰوةِ فَاغْسِلُوْا وُجُوْهَكُمْ وَاَيْدِيَكُمْ اِلَى الْمَرَافِقِ وَامْسَحُوْا بِرُءُوْسِكُمْ وَاَرْجُلَكُمْ اِلَى الْكَعْبَيْنِ وَاِنْ كُنْتُمْ جُنُبًا فَاطَّهَّرُوْا

"मुसलमानो जब तुम नमाज़ पढ़ने खड़े हो तो अपने हाथ कोहनियों तक धो लिया करो। और अपने सरों पर मस्ह कर लिया करो और अपने पांव को टख़नों तक धो लिया करो।" (माइदा आयत 6)

औक़ात-ए-इबादत की निस्बत क़ुरआन में आया है, कि :-

وَاَقِمِ الصَّلٰوةَ طَرَفَيِ النَّهَارِ وَزُلَفًا مِّنَ الَّيْلِ

"पस पाकी है अल्लाह को जब तुम शाम करो और तीसरे पहर और जब तुम दोपहर करते हो।" और "तू दिन की दोनों तरफ़ों में और कुछ रात गए नमाज़ पढ़ा कर।" (हूद आयत 114)

اَقِمِ الصَّلٰوةَ لِدُلُوْكِ الشَّمْسِ اِلٰى غَسَقِ الَّيْلِ وَقُرْاٰنَ الْفَجْرِ

“सूरज के ढलने के वक़्त से रात के अंधेरे तक नमाज़ पढ़ा कर।” (बनी-इस्राईल आयत 78)

जाए (जगह) इबादत की निस्बत हुक्म है :-

قَدْ نَرٰى تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِي السَّمَآءِ ۚ فَلَنُوَلِّيَنَّكَ قِبْلَةً تَرْضٰىهَا ۪ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۭ وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهٗ

“फेर ले अपना मुँह मस्जिद हराम की तरफ़। और जहां तुम हो अपना मुँह उस की तरफ़ फेरो।” अलीख (बक़रह आयत 144)

وَ اَتِمُّوا الْحَجَّ وَ الْعُمْرَةَ لِلّٰهِ فَاِنْ اُحْصِرْتُمْ فَمَا اسْتَيْسَرَ مِنَ الْهَدْيِ ۚ وَ لَا تَحْلِقُوْا رُءُوْسَكُمْ حَتّٰى يَبْلُغَ الْهَدْيُ مَحِلَّهٗ ؕ فَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ مَّرِيْضًا اَوْ بِهٖۤ اَذًى مِّنْ رَّاْسِهٖ فَفِدْيَةٌ مِّنْ صِيَامٍ اَوْ صَدَقَةٍ اَوْ نُسُكٍ ۚ فَاِذَاۤ اَمِنْتُمْ ۪ فَمَنْ تَمَتَّعَ بِالْعُمْرَةِ اِلَى الْحَجِّ فَمَا اسْتَيْسَرَ مِنَ الْهَدْيِ ۚ فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ ثَلٰثَةِ اَيَّامٍ فِي الْحَجِّ وَ سَبْعَةٍ اِذَا رَجَعْتُمْ ؕ تِلْكَ عَشَرَةٌ كَامِلَةٌ ؕ ذٰلِكَ لِمَنْ لَّمْ يَكُنْ اَهْلُهٗ حَاضِرِي الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ وَ اعْلَمُوْۤا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ

“अल्लाह के लिए हज और उमरा को पूरा करो। फिर अगर तुम रोके जाओ तो जो कुछ मयस्सर हो क़ुर्बानी भेज दो। और अपने सर ना मुंडाओ जब तक क़ुर्बानी अपनी जगह ना पहुंचे। फिर जो कोई तुम में से बीमार हो या उस के सर में कोई दुख हो तो चाहिए कि वो फ़िद्या दे। रोज़ा या सदक़ा या ज़बीहा। फिर जब तुम अमन पाओ तो जिसने हज के साथ उमरा मिलाकर फ़ायदा उठाया है। उस को चाहिए कि जो कुछ मयस्सर हो क़ुर्बानी दे। फिर जिसको क़ुर्बानी मयस्सर ना हो वह हज के दिनों में तीन रोज़े रखे और सात रोज़े उस वक़्त रखे जब तुम अपने घरों को लौटो।” अलीख

(बक़रह आयत 196)

لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ أَنْ تَبْتَغُوا فَضْلًا مِّنْ رَّبِّكُمْ فَإِذَآ أَفَضْتُمْ مِّنْ عَرَفٰتٍ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ عِنْدَ الْمَشْعَرِ الْحَرَامِ

“जब तुम मैदान-ए-अर्फ़ात से वापिस हो तो मशहर-उल-हराम के पास ख़ुदा को याद करो। फिर तुम तवाफ़ को चलो जहां से सब लोग चलते हैं। और ख़ुदा से अपना गुनाह बख्शवाओ।” (बक़रह आयत 198)

अरबाब-ए-बसीरत इंजीली और क़ुरआनी आदाब-ए-इबादत का मुक़ाबला करके ख़ुद फ़ैसला कर सकते हैं कि इन दोनों में से कौनसा मज़्हब आलमगीर होने की क़ाबिलीयत रखता है। इस्लाम की किताब पर لا یمسه الا المطهرون का दरबान बैठा है लेकिन इंजील का ये हाल है कि :-

گیر ودار وحاجب ودربان دریں درگاہ نیست

इस्लामी पाकीज़गी जिस्मानी और ज़ाहिरी तहारत है। जिसका बातिनी और रुहानी पाकीज़गी से किसी तरह का भी ताल्लुक़ नहीं। ये पाक किताब अरबी में है जो आम फहम नहीं। जिसका तर्जुमा हज़ार दिक़्क़त छपता है और वो भी मतन से मुअर्रा नहीं होता। पानी से वुज़ू करना और मिट्टी से तयम्मुम करना। क़िब्ला रुख हो कर नमाज़ पढ़ना और वो भी सिर्फ ख़ास औक़ात (वक्तों) में और इस पर तुर्रा (ज़्यादा) ये कि अरबी ज़बान में नमाज़ पढ़ी जाये। एक तुर्की मुसन्निफ़ ने क्या ख़ूब कहा है :-

"ये अजीब तमाशा है कि हम एक ऐसे अल्लाह की परस्तिश करते हैं जो सबको अरबी में मुख़ातब करता है और हक़ तो ये है कि वो अरबी के सिवा तमाम दीगर ज़बानों से क़तई ना-आश्ना है।"

लेकिन इंजीली अहकाम के मुताबिक़ ये ज़रूरी नहीं कि हम काअबा रू हों।

"अगर टख़नों के नीचे या ऊपर पाजामा हो गया तो इस से ख़ुदा की क़ुर्बत (नज़दिकी) में क्यों फ़र्क़ आने लगा? सर पर इमामा हो या ना हो रुहानी क़ुर्बत (नज़दिकी) को इस से क्या वास्ता? ख़ुदा दस्तार और शलवार और वुज़ू को नहीं देखता। वो ख़ुलूस-ए-नीयत और सफ़ाई क़ल्ब (दिल) को देखता है। अय्यामे माहवारी में औरत नमाज़ नहीं पढ़ सकती गोया हाईज़ा के लिए ख़ुदा अपने कान बंद कर लेता है। पस हर माह में क़रीबन एक हफ़्ते तक औरत जिस्मानी नापाकी के बाइस मज़हबी फ़रीज़ा को अदा नहीं कर सकती। ये कहाँ की आलमगीरी है जो मर्द और औरत महज़ जिस्मानी नापाकी की वजह से ख़ुदा की क़ुर्बत (नज़दिकी) हासिल नहीं कर सकते।"

(आलमगीर मज़्हब)

दिल कि पाकीज़ा बूद जामा नापाक चह सूद?

सरका बेमग़ज़ बूद फ़ग़ज़ी दस्तार चह सूद?

ग़रज़ ये कि कि नमाज़ के औक़ात मुक़र्रर हैं। इस के आदाब-ए-रुकूअ व सुजूद व क़ुऊद भी मुक़र्रर हैं बल्कि चंद औक़ात ऐसे भी हैं जिनमें ख़ुदा को सज्दा करना हराम है चुनान्चे मिश्कात बाब औक़ात-उल-नही (مشکواۃ باب اوقات النھی) में मुस्लिम की रिवायत उक़्बा बिन आमिर से है कि तीन वक़्त हैं जिनमें रसूल ﷺ हमें मना किया करते थे कि नमाज़ पढ़ने से। पहला वक़्त जब सूरज निकलने लगे, जब तक बुलंद ना हो। दूसरा वक़्त जब ठीक दोपहर हो, जब तक दिन ना ढले। तीसरा वक़्त जब सूरज ग़ुरूब हो, जब तक अच्छी तरह ग़ुरूब ना हो जाए। वजह ये बताई कि तुलूअ व गुरूब के वक़्त सूरज शैतान के दो सींगों के दर्मियान (बयन-क़रनी-उल-शैतान بین قرنی الشیطان) होता है। और दोपहर के वक़्त दोज़ख़ में ईंधन झोंका जाता है। सिवाए जुमाअ के रोज़ के। (ان جھنم تسجر الایوم الجمعۃ) चुनान्चे ख़्वाजा कमाल उद्दीन मरहूम भी। **"यनाबीअ-उल-मसीहिय्यत"** मैं फ़रमाते हैं :-

> "क़ुर्बान जाऊं हज़रत मुहम्मद ﷺ के, उसने इस्लामी नमाज़ों को इस शाइबा (आफ़्ताब परस्ती) से अलग कर दिया और हुक्म दिया कि सूरज के तुलूअ ज़वाल और ग़ुरूब के वक़्त कोई नमाज़ फ़र्ज़ हो या नफ्ल ना पढ़ी जाये।" (यनाबीअ-उल-मसीहिय्यत सफ़ा 67)

गोया ख़ुदा तआला ये नहीं जान सकता कि कौन शम्श (सूरज) परस्त है और कौन ख़ुदा-परस्त। लिहाज़ा जिस वक़्त शम्श परस्त "सूरज महाराज"

को सज्दा करें उस वक़्त मोमिनीन पर लाज़िम है कि हक़ीक़ी माबूद की परस्तिश को गुनाह समझें।

वुज़ू की शर्त औक़ात की पाबंदी, काअबा की सिम्त शनासी ऐसी शराइत हैं जिनके बग़ैर कोई मुतशर्रे (शरीअत पर अमल करने वाला, परहेज़गार) मुसलमान इबादत नहीं कर सकता। लेकिन मसीही रुहानी ताअलीम के मुताबिक़ मसीही हर वक़्त नमाज़ अदा कर सकता है। वो हर सम्त (हर तरफ) को अपना क़िब्ला बना सकता है। मुसलमान सूरज के ठिकाने की खोज में होता है या क़िब्ला नुमा से मदद लेता है और चाहता है कि काअबा मेरी नाक की सीध पर रहे। उस की नमाज़ के औक़ात भी मुक़र्ररा हैं। और उस की नमाज़ क़ज़ा भी हो जाती है मगर ईसाई की नमाज़ कभी क़ज़ा नहीं होती। वो ताअय्युन क़िब्ला में परेशान व मज़तरब नहीं रहता। ना उस को क़ज़ा पढ़ने की ज़रूरत है और ना सज्दा सहव करने की।

بخدا خبر ندارم چو نمازے گذارم
کہ تمام شد رکوعے کہ امام شد فلانے

(मौलाना रुम)

मगर जिस दीन में इस्लाम की सी ज़ाहिरी पाबंदी हो वो आलमगीर होने की सलाहीयत नहीं रख सकता। हज का फ़रीज़ा भी हमारे इस दाअवे का

मुसद्दिक़ है कि रसूल अरबी सिर्फ़ क़ौम अरब के लिए ही आए थे। आँहज़रत के ज़माने में हज एक आसान बात थी क्योंकि अहले अरब एक मर्कज़ी जगह पर जमा हो सकते थे। रुए ज़मीन के बाशिंदों के लिए इस फ़र्ज़ को अदा करना एक ना-मुम्किन बात है। आलमगीर मज़्हब के उसूल व अहकाम ऐसे होने चाहिऐं जिनकी हर क़ौम और हर मुल्क और हर ज़माने के अफ़राद यकसाँ तौर पर तामील कर सकें। ये नहीं कि बाअज़ आसानी से इस पर अमल पैरा हों और दूसरे हज़ार दिक़्क़त से इस पर अमल कर सकें। इसी लिए मसीहीय्यत में ना कोई हज है ना उमरा ना अर्फ़ात है। और ना क़िब्ला बल्कि हर मसीही का दिल बैत-उल्लाह (ख़ुदा का घर) और ख़ुदा का मस्कन है चुनान्चे मुक़द्दस पौलुस फ़रमाते हैं कि **"क्या तुम नहीं जानते कि तुम ख़ुदा का मुक़द्दस हो। और ख़ुदा का रूह तुम में बसा हुआ है।"** (1_कुरिन्थियों 3:16)

मसीहीय्यत हमें ये ताअलीम देती है कि बारी तआला हाथ के बनाए हुए घरों में नहीं रहता। चुनान्चे नबी कहता है कि **"ख़ुदावंद ख़ुदा फ़रमाता है। आस्मान मेरा तख़्त और ज़मीन मेरे पांव तले की चौकी है तुम मेरे लिए कैसा घर बनाओगे। या मेरी आरामगाह कौनसी है? (आमाल 7:48)**

अला हाज़ा-उल-क़यास रोज़े के फ़रीज़े पर ग़ौर करो। जिसके बाइस सहरी से लेकर ग़ुरूब-ए-आफ़्ताब तक खाने पीने से परहेज़ करना लाज़िम है। अव्वल

खाना, पीना अश्या-ए-ख़ुर्दनी वग़ैरह से परहेज़ करना एक जिस्मानी अम्र है। जिसका ताल्लुक़ हक़ीक़ी रूहानियत और क़ुर्बत (नज़दिकी) ईलाही से नहीं है। “खाना हमें ख़ुदा से नहीं मिलाएगा। ना खाएं तो हमारा कुछ नुक़्सान नहीं। और अगर खाएं तो नफ़ा नहीं।” (1_कुरिन्थियों 8:8) इलावा बरीं इस्लामी रोज़ा ऐसा है कि कुल बनी-नूअ इन्सान इस की शराइत की तामील करने से कासिर रहते हैं।

इस के बरअक्स मसीहीय्यत ने रोज़े के लिए ख़ास औक़ात (वक़्त) और महीने मुक़र्रर नहीं किए। अल्लाह तआला फ़रमाता है **“ख़ुदा की बादशाहत खाने पीने पर नहीं बल्कि रास्तबाज़ी और मेल मिलाप और उस ख़ुशी पर मौक़ूफ़ है जो रूह-उल-क़ूद्दस की तरफ़ से होती है।” (रोमीयों 14:17)** फिर इर्शाद है “मेरे लोग कहते हैं कि हमने किस लिए रोज़े रखे। ख़ुदा तू देखता है नहीं? तू इस पर लिहाज़ नहीं रखता? देखो इस तरह का रोज़ा रखना नहीं चाहीए। क्या ये वो रोज़ा है जो मुझे पसंद है? ऐसा दिन कि अपनी जान को दुख दे और अपने सर को झाऊ की तरह झुकाए? क्या वो रोज़ा जो मैं चाहता हूँ ये नहीं कि ज़ुल्म की ज़ंजीरें तोड़ें। और जुए (बोझ) के बंधन खोलें? और मज़लूमों को आज़ाद करें। बल्कि हर एक जुए (बोझ) को तोड़ डालें क्या ये नहीं कि तू अपनी रोटी भूकों को खिलाए और मिस्कीनों को जो आवारा हैं अपने घर में लाए। और जब किसी को नंगा देखे तो उसे पहनाए और तू अपने हम-जिंस

से रूपोशी ना करे?" (यसअयाह 58:3-7) इस के बिलमुक़ाबिल क़ुरआनी रोज़े की हिदायत मुलाहिज़ा हो :-

وَكُلُوْا وَاشْرَبُوْا حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَكُمُ الْخَيْطُ الْاَبْيَضُ مِنَ الْخَيْطِ الْاَسْوَدِ مِنَ الْفَجْرِ ثُمَّ اَتِمُّوا الصِّيَامَ اِلَى الَّيْلِ

"जब तक फ़ज्र को सफ़ैद धागा काले धागे से साफ़ जुदा नज़र ना आवे खाओ पियो। फिर रात तक रोज़ा तमाम करो।" (बक़रह आयत 187)

नाज़रीन ख़ुद इन्साफ़ करें कि रोज़े की कौनसी हिदायत आलमगीर कहलाने की मुस्तहिक़ है।

इस्लाम में क़ुर्बानी की हिदायत और हुक्म मौजूद है, ताकि अल्लाह मोमिनों से उनके गुनाह दफ़ाअ करे (हज आयत 39) और इस बारे में यहां तक मुबालग़ा से काम लिया गया है कि लिखा है कि :-

فَقُلْنَا اضْرِبُوْهُ بِبَعْضِهَا كَذٰلِكَ يُحْيِ اللّٰهُ الْمَوْتٰى وَيُرِيْكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ (۷۳)

"ख़ुदा ने एक मुर्दे को एक क़ुर्बानी की गाय के टुकड़े से ज़िंदा कर दिया।"

(बक़रह आयत 73)

ख़ुदा ने क़ुरआन में नबी को क़ुर्बानी के लिए हुक्म दिया :-

فَصَلِّ لِرَبِّكَ وَانْحَرْ (۲) اِنَّ شَانِئَكَ هُوَ الْاَبْتَرُ (۳)

“ऐ नबी अपने रब के लिए क़ुर्बानी कर। बेशक जो तेरा दुश्मन है वही बे नस्ल है।” (सूरह कोसर आयत 2-3)

लेकिन हक़ीक़त ये है कि “ख़ुदा सोख़्तनी क़ुर्बानीयों और ज़बीहों से ख़ुश नहीं होता।” अल्लाह तआला फ़रमाता है :-

“देख हुक्म मानना क़ुर्बानी चढ़ाने से और शुन्वा होना मेंढों की चर्बी से बेहतर है।” (1_समुएल 15:22) “ख़ुदा से सारे दिल और सारी अक़्ल और सारी ताक़त से मुहब्बत रखना और अपने पड़ोसी से अपने बराबर मुहब्बत रखना सोख़्तनी क़ुर्बानीयों और ज़बीहों से बढ़कर है।” (मरक़ुस 12:33)

जानवरों की क़ुर्बानी का उसूल दर-हक़ीक़त मज़्हब की आलमगीरीयत के मुनाफ़ी (खिलाफ) है। ख़ुद हिन्दुस्तान को देख लो हर साल क़ुर्बानी की ईद पर फ़साद होता है क्योंकि अहले इस्लाम की क़ुर्बानी से अहले हनूद (हिंदू की जमा) की दिल-आज़ारी होती है। जिससे साबित होता है कि इस्लाम का ये उसूल और हुक्म हर मुल्क पर हावी नहीं हो सकता। और इस से हमारे दाअवे की भी तस्दीक़ होती है। कि इस्लाम सिर्फ़ आँहज़रत के हम वतन अरबों के लिए था। जहां ऊंट वग़ैरह की क़ुर्बानी हो सकती थी। जिन ममालिक में ऊंट या दीगर क़ुर्बानी के जानवर नहीं हैं वो ख़ुद इन अहकाम से मुस्तसना (अलग) हो गए और इस्लाम आलमगीर मज़्हब ना रहा।

पस इस्लामी इबादत के सब उसूलों का ताल्लुक़ मुल्क-ए-अरब के साथ है। और वो ज़मान व मकान की क़ुयूद (क़ैद) से आज़ाद नहीं हैं लिहाज़ा वो आलमगीर नहीं हो सकते।

फ़स्ल शश्म

उसूल-ए-शरीअत

(1)

हमने अपने रिसाले **<u>“कलिमतुल्लाह की ताअलीम”</u>** में इंजील जलील के असासी उसूल पर मुफ़स्सिल बह्स की है और किताब **“मसीहीय्यत की आलमगीरी”** के बाब दोम में ये साबित कर दिया है कि कलिमतुल्लाह के उसूल जामा और आलमगीर हैं। वो अलिफ़ (الف) से लेकर य (ی) तक रुहानी हैं। लिहाज़ा ज़मान व मकान की क़ुयूद से आज़ाद और कुल अक़्वाम व ममालिक-ए-आलम पर हावी हैं। कुल दुनिया के मज़ाहिब के रसूलों और पैग़म्बरों के अहकाम उनके अपने माहौल या मुख़्तलिफ़ मुअल्लिमों के ख़यालात का मजमूआ हैं जो उनकी क़ौम के साथ मुख़तस हैं जिसकी वजह से उनके पैग़ाम में आलमगीर होने की सलाहीयत नहीं रहती। इन उसूलों का ताल्लुक़ सिर्फ एक क़ौम के साथ वाबस्ता था और यही वाबस्तगी उनको आलमगीर होने नहीं देती। लेकिन इंजील जलील के उसूल किसी ख़ास मुल्क क़ौम या ज़माने के लिए वज़ाअ नहीं हुए थे। लिहाज़ा ज़मान व मकान की क़ुयूद से आज़ाद होने की वजह से इनका इतलाक़ कुल अक़्वाम व ममालिक व अज़मनह पर हो

सकता है और होता रहा है। कलिमतुल्लाह आलम-ए-रूहानियत के वाहिद हुकमरान और ताजदार हैं।

(2)

अहकाम-ए-शरइयह ज़मान व मकान की क़ुयूद में जकड़े हैं।

लेकिन क़ुरआन के उसूल और इस्लाम के अहकाम आलमगीर होने की अहलीयत नहीं रखते वो ज़मान व मकान की क़ुयूद से आज़ाद नहीं बल्कि क़ुयूद शरइयह की ज़ंजीरों और दीगर पाबंदीयों से जकड़े हुए हैं वो जामिद और ठोस हैं जो ज़रूरत-ए-ज़माना और हालत-ए-ख़ास के मुताबिक़ नहीं ढाले जा सकते। ज़रूरीयात-ए-ज़िंदगी तग़य्युर-पज़ीर होती हैं पस वो हर मुल्क क़ौम और ज़माने के लिए यकसाँ नहीं होतीं। लेकिन इस्लामी अहकाम इन तग़य्युरात (बदलाव) के मुताबिक़ हस्ब-ए-ज़रूरत चस्पाँ नहीं किए जा सकते। क्योंकि शारअ (सीधा रास्ता, शरीअत सीखाने वाले) के ख़्वाब व ख़्याल में भी ना था कि उस के अहकाम का ग़ैर अरब पर भी इतलाक़ किया जाएगा। तमाम दुनिया के ममालिक के लोग और हर ज़माने के मुख़्तलिफ़ अफ़राद एक ही लाठी से हांके नहीं जा सकते। ख़ुद हज़रत रसूल अरबी की हीने-हयात (जीते जी) में आपको मौक़ा और महल के मुताबिक़ और तग़य्युर (बदलाव) हालात के बाइस

चंद अहकाम बदलने पड़े थे। नासिख़ व मंसूख का मुसल्लिमा मसअला इस अम्र पर शाहिद है।

(सूरह बक़रा आयत 100) जलाल उद्दीन ने अपनी किताब **"इत्तिक़ान"** में बीस (20) ऐसी आयात लिखी हैं जिन पर नासिख़ व मंसूख का इतलाक़ होता है। शाह वली-उल्लाह अपनी किताब "हुज्जतुल-बालिग़ा" में अस्बाब नस्ख़ पर बहस करते हुए एक हदीस पेश करते हैं कि आँहज़रत ने फ़रमाया :-

"کلامی ینسخ کلام اللہ و کلام اللہ ینسخ کلامی و کلامہ اللہ ینسخ بعض بعضھا"۔

"यानी मेरा कलाम ख़ुदा के कलाम को मंसूख नहीं कर सकता और ख़ुदा का कलाम मेरे कलाम को मंसूख करता है और ख़ुदा का कलाम दूसरे कलाम को मंसूख करता है।"

फिर इस की तशरीह में फ़रमाते हैं कि :-

> "किसी शैय में एक वक़्त में कोई मस्लिहत या ख़राबी होती है, इस के मुताबिक़ उस का हुक्म मुतय्यन हो जाया करता है। इस के बाद एक ज़माना आता है, उस में वो हालत उस शैय की नहीं रहती इसलिए वो हुक्म भी उस का नहीं रहता। इस की एक मिसाल ये है कि आग़ाज़ इस्लाम में उम्मत के लिए कुफ़्फ़ार से जंग करने की इजाज़त ना थी। उस वक़्त ना लश्कर था ना ख़िलाफ़त लेकिन जब आँहज़रत ﷺ ने हिज्रत फ़रमाई और मुसलमान वापिस आ गए। ख़िलाफ़त का ज़हूर हुआ और दुश्मनाँ-

ए-ख़ुदा से मुक़ाबले की क़ुव्वत हो गई। तो ख़ुदा तआला ने ये हुक्म नाज़िल किया कि अब इन लोगों को लड़ने की इजाज़त है।"

(आयात अल्लाह अल कामिला तर्जुमा हुज्जत-उल-बालग़ा बाब 73 सफ़ा 191)

जब रसूल अरबी इस दुनिया से कूच कर गए और शरीअत ईलाही में तब्दीली का इम्कान ना रहा और शरीअत ठोस हो गई तो अब इस्लामी शराअ हमें सिर्फ एक ख़ास क़िस्म की रसूम, तर्ज़ मुआशरत, इक़तिसादीयात और सियास्यात वग़ैरह की पाबंद करती है, जिनका ताल्लुक़ पहली सदी हिज्री के ज़माने के साथ है जिनका इतलाक़ इस बीसवीं (20) सदी मसीही में मुख़्तलिफ़ ममालिक और मुख़्तलिफ़ तबाइअ (तबीयत की जमा) पर नहीं हो सकता। अब तमाम इस्लामी ममालिक इस अम्र को महसूस कर रहे हैं कि अगर वो अक़्वाम आलम के हमदोश हो कर चलना और बाइज़्ज़त ज़िंदगी बसर करना चाहते हैं तो उनको इन तमाम क़ुयूद शरइयह से आज़ाद होना होगा। "जिनके आहनी पंजा" में वो अब तक जकड़े रहे हैं ایدھمہ اللہ بنصرہ उन तमाम इस्लामी ममालिक की तारीख़ ज़बान-ए-हाल से पुकार कर कह रही है कि इस्लाम में आलमगीर मज़्हब होने की सलाहीयत नहीं है। **<u>"जिसके कान सुनने के हों वो सुन ले।"</u>**

(3)

इस रोशन हक़ीक़त के बावजूद बाअज़ अश्ख़ास ऐसे भी हैं जो दौरे हाज़रा में ग़ैर अरब ममालिक में इस्लाम की इशाअत का ढोल बजा कर जाहिल मुसलमानों से रुपया बटोर कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। चुनान्चे जब मिर्ज़ाई जमाअत ने देखा कि अब और किसी हीले से रुपया हाथ नहीं आता तो उन्होंने मुसलमानों की जेबों पर इस्लाम के नाम से डाका डालना शुरू कर दिया है। चुनान्चे इस फ़िर्क़ा ज़ाला (فرقہ ضالہ) (गुमराह फ़िर्क़े) की **क़ादियानी जमाअत ने "तहरीक जदीद"** के नाम से और **लाहौरी जमाअत ने "इशाअत इस्लाम"** के नाम से हिन्दुस्तान के मुसलमानों को धोका देना शुरू कर दिया है। वो बड़े ज़ोर शोर से दाअवा करते हैं कि वो बर्र-ए-आज़म यूरोप और अफ़्रीक़ा और अमरीका में तब्लीग़ इस्लाम कर रहे हैं और उन ममालिक के लोग धड़ा धड़ इस्लाम के हल्क़ा-ब-गोश हो रहे हैं। उनको दायरा इस्लाम में लाने के लिए रुपये की अपील करते हैं हर सालाना जलसे पर इस ख़ाना-साज़ तब्लीग़ की रिपोर्ट बाज़ी होती। अहमक़ चंदा दहिंदगान की ख़ातिर जमुई के लिए चंद एक "नव-मुस्लिमों" (नए मुसलमान) के नाम, और तसावीर शाएअ की जाती हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में ऐसे मुसलमान भी हैं जिनके सर में दिमाग़ और दिमाग़ में अक़्ल है और वो इस ख़ुदादाद अक़्ल को इस्तिमाल भी करते हैं। और वक़्तन फ़ वक़्तन मिर्ज़ाई जमाअत के दो फ़िर्क़ों के पोल खोल देते हैं। चुनान्चे

मरहूम ख़्वाजा कमाल-उद्दीन की इंगलिस्तानी तब्लीग़ी तहरीक की निस्बत एक मुसलमान अख़्बार मदीना बिजनौर में ज़ेर-ए-उनवान "मकतूब लंदन" यूं फ़रमाते हैं :-

> "तमाम तहरीक (यानी इंग्लिस्तान में तब्लीग़ इस्लाम की तहरीक) एक बड़ा फ़रेब है क्या आप समझते हैं वो इस्लामी ज़िंदगी पैदा कर सकते हैं। जिसका डाक्टर इक़बाल ख़्वाब देखते हैं या जिसके लिए एक मुसलमान चंदा देता है मसलन **ग़ैर ज़बीहा गोश्त से इज्तिनाब, तहारत बदन,** कपड़े की पाकी, **पाबंदी सौम सलात और ज़कात और हज** जिन्हें हम रुक्न और इस्लामी फ़राइज़ समझते हैं। आप इस के मुताल्लिक़ यहां कहें तो लोग आपको ख़ुसूसुन अंग्रेज़ मुसलमान दकियानूस ख़्याल **(पुराने रस्मो रिवाज) कहेंगे और आप भी नादिम (शर्मिंदा) होंगे।** अगर कमाल उद्दीन मिशन यहां कामयाब है तो ये ख़ुद इस की बय्यन दलील है कि उन्होंने रूह इस्लाम पर कोई ज़ुल्म किया है। वो किंग मस्जिद एक उम्दा सोशल क्लब है। फ़ायदा ये है कि दूसरे थियटर तमाशा गाहों की तरह वहां ख़र्च कुछ नहीं। मैं वाक़ई इस के समझने से क़ासिर हूँ कि ये देखते हुए।..... लंदन के इस क्लब के लिए जिसका नाम ग़लती से द किंग मस्जिद है रुपया लोग किस तरह देते हैं? बेगम साहिबा दाम इक़बालह वालिया भोपाल ने दौरान-ए-क़ियाम इंग्लिस्तान में इस मस्जिद में नमाज़ पढ़ना गवारा **ना किया और इस फ़रेब पर बार-बार रोईं।"**

(7 जनवरी 1928 ई॰ नंबर 5 जिल्द 17 सफ़ा 4)

पस तारीख़ और दौर-ए-हाज़रा के हालात से हमारा दाअवा साबित हो गया कि इस्लाम में आलमगीर होने की अहलीयत (क़ाबिलियत) सिरे से ही नहीं है। और अगर कोई मुसलमान उस को आलमगीर समझता है तो **"रूह इस्लाम पर ज़ुल्म करता है।"**

इन्ही उमूर को पेश-ए-नज़र रखकर अंग्रेज़ मुसलमान, ख़ुसूसुन मिर्ज़ाई फ़िर्क़े की लाहौरी जमाअत की माया नाज़ हस्ती मरहूम लार्ड हैडले इस्लाम में क़ताअ व बुरीद करना (कांट छांट करना) चाहते हैं। ताकि अंग्रेज़ मुसलमान हो सकें। हम जैल में उनके ख़त का इक़्तिबास करते हैं जो यक्म जुलाई 1927 ई॰ के क़ादियानी (लाहौरी) अंग्रेज़ी अख़्बार लाईट में शाएअ हुआ था। आप फ़रमाते हैं कि :-

> "अगर आप यार्क शाइर बर्तानिया के किसी किसान पर ज़ोर डालें कि वो सूअर का नम्कीन गोश्त, अंडे और शराब का इस्तिमाल तर्क कर दे। हालाँकि ये ग़िज़ाएँ उस के लिए नसलों से मुफ़ीद साबित हो रही हैं और उसे ये कहें कि अगर इन इश्याय का इस्तिमाल जारी रखोगे तो नजात का दरवाज़ा तुम्हारे लिए बंद हो जाएगा। तो आप उसे इस्लाम की सदाक़त और वसीअ-उल-नज़री का मुअतक़िद (अक़ीदतमंद, पैरौ) बनाने से क़ासिर रहेंगे। इसी तरह अगर आप एक मुसलमान के लिए ये लाज़िमी शर्त क़रार देंगे कि हर एक ताजिर दिन भर में पाँच बार सज्दा बजा लाए और नमाज़ पढ़े तो आप बहुत से लोगों को इस्लाम के हलक़े

में ना ला सकेंगे। जो कुछ अरब के एक बाशिंदे के लिए जो सहराई गिर्द व नवाह में रहता है और ढीले और सस्ते कपड़े पहनता है मुम्किन है। वो एक मसरूफ़ ताजिर के लिए जो क़ीमती लिबास में मलबूस है, ना-मुम्किन है। एक गीले और कीचड़ वाले बाज़ार में नमाज़ के लिए झुकने का ख़्याल ही हमाक़त में दाख़िल है। जो शख़्स ऐसा करना चाहता है उसे ये भी सोचना होगा कि **कपड़ों की सिलाई का ख़र्च किस क़द्र उट्ठेगा। अंग्रेज़ के दिमाग़ में ना आ सकेगा** कि नजात के लिए ये चीज़ भी ज़रूरी है। हालात गर्दो पेश ना-मुवाफ़िक़ हैं और दाइमी ख़ुशी के हुसूल का इन्हिसार इस बात पर ना होना चाहीए। कि कोई शख़्स मक्का में पैदा हुआ है या इंग्लिस्तान में पस मेरी राय है कि हमें सिर्फ़ ख़ुदा और **उस के पैग़म्बर पर ईमान लाना चाहिए।** और मुझे कोई वजह नहीं नज़र आती कि क्यों दूसरे अक़ाइद लोगों के गले में ठूंसे जाएं जब कि ऐसा करने से **हम उन्हें इस्लाम से दूर करते हैं।"**

(माख़ूज़ अज़ प्रताप लाहौर 11 सितंबर 1927 ई॰)

(4)

सय्यद मक़्बूल अहमद साहब लखनऊ के रिसाले निगार में इसी मज़्मून पर बहस करते हुए फ़रमाते हैं :-

"दुनिया में उमूमन दो क़िस्म के मज़ाहिब पाए जाते हैं। एक क़ौमी और दूसरे उमूमी। क़ौमी मज़ाहिब हनूद, (हिन्दू धर्म) यहूद व मजुस हैं। उमूमी मज़्हब बुध, नस्रानीयत और एक हद तक इस्लाम

हैं। पहले क़िस्म के मज़्हब की ख़ुसूसीयत ये है कि वो एक क़ौम के लिए मख़्सूस होता है और दूसरी क़ौम में इस की इशाअत ममनू व नामुम्किन होती है। इस के बरख़िलाफ़ दूसरे क़िस्म के मज़्हब हैं। मगर इस्लाम की सूरत दोनों के बैन-बैन अजीब है। वो इस लिहाज़ से क़ौमी मज़्हब है कि क़ुरआन के साथ मज़्हब का जुज़्व (हिस्सा) वो क़ौमी शरीअत भी है जो बिलख़सूस अरब के लिए क़ुरआन और ज़्यादा-तर रिवायत से तदवीन की गई है। क्योंकि जब किसी मज़्हब के साथ शरीअत जुज़्व लाज़िम हो तो वो क़ौमी मज़्हब पाया जाएगा इस के मअनी सिर्फ यही हो सकते हैं कि क़ानून एक ख़ास मुआशरत के क़ौम के साथ मख़्सूस हो गया है। उमूमी (आम) मज़्हब शरीअत का पाबंद नहीं हो सकता। बशर्ते के इस मज़्हब में हर क़ौम को शरीअत में इख़्तियार का हक़ हासिल हो। इस्लाम एक अरबी शरीअत का पाबंद बना दिया गया है।....उसने मुख़्तलिफ़ क़ौमों को एक रंग और एक ख़्याल में ढाल कर उनको एक मर्कज़ और एक शरीअत से वाबस्ता कर दिया है। हमारे लिए तो ये एक ऐसा मसअला है जिसको हम इस्लाम के एहसानात में शुमार करते रहे हैं। लेकिन वाक़िया ये है कि इस्लाम के इस एक फेअल ने मुसलमानान-ए-आलम की एक अजीब सूरत बनाकर उनको क़ौमी और दुनियावी तरक़्क़ी से ख़ाली कर दिया है। बल्कि इस्लाम की तब्लीग़ी तरक़्क़ी में इस दर्जा हारिज (मुज़ाहमत करने वाला) है कि बिलाशुब्हा अब वक़्त आ गया है कि हम साफ़ लफ़्ज़ों में इस की ख़राबियों का इआदा करें।”

(माह मई 1928 ई॰)

“अगर इस्लाम एक आलमगीर मज़्हब है।....तो क्यों हम अरबी क़ौमी ख़साइस (ख़ासीयत की जमा, आदात) के लिए मसलन खतना, अक़ीक़ा, तवाफ़-ए-काबा, सई सफ़ा व मर्वा इमत्तीनाअ लहम् ख़िंज़ीर, अहकाम विरासत, निकाह तलाक़ व इज़दवाज, बैअ व शरा बल्कि एक ख़ास तरीक़ा इबादत के लिए (जो बिल-तख्सीस अरबी ज़बान में हो) मज्बूर किए जाते हैं। और बग़ैर इनके हम मुसलमान नहीं समझे जाते। ज़ाहिर है कि दुनिया की दूसरी क़ौमों का बलिहाज़ आब व हवा, मिज़ाज, ज़बान, आदात, मुआशरत व तमद्दुन वग़ैरह इख़्तिलाफ़ रखना एक फ़ित्री ख़ास्सा है।..... पस अगर इस्लाम अरबी क़ौम के लिए मख़्सूस था तो इस का दूसरी क़ौम में फैलाना बेमाअनी है और अगर फैलाया जाये तो इस की अव्वल शर्त ये होनी चाहिए कि ऐसी क़ौम को पहले अरबीयत में ढालना चाहिए और इस के बाद उनको मुसलमान करना चाहिए।.... नतीजा ये हुआ कि जो कौमें फ़ित्रतन अरब के आदात इख़्तियार करने के क़ाबिल ना थीं। ख़ुसूसुन जो सर्द मुल्कों मसलन यूरोप के रहने वाली थीं उनको इस्लाम लाने में हमेशा तकल्लुफ़ हुआ और इस्लाम सिर्फ उन ममालिक में फैल कर रह गया जहां तक अरबों की तल्वार और सल्तनत वसीअ हुई। चुनान्चे अहले शाम व मिस्र व बरबर को मजबूरन अपना तमद्दुन बदल कर मस्तअ्रब (वो मशरिक़ी जो मगरबी उलूम का जानने वाला हो) क़ौम बनना पड़ा। और अहले अजम ने अपना क़ौमी शआर ज़बान अरबों के लिए ना बदली। उन्हों ने शरीअत के क़ुयूद से बाहर हो कर सूफ़ीयत की बिना (बुनियाद) डाली। इस्लाम को इस ख़तरनाक ग़लती का उस वक़्त तक पता ना चला। जब तक अरब पर हुकूमत का ख़ुमार था। मगर जब ये ख़ुमार टूटा तो उस के साथ

इस्लाम का रिश्ता तरक़्क़ी भी तार अन्कबूत (मकड़ी के जाले) की तरह टूट कर ज़मीन पर गिर पड़ा और अब ये हालत है कि अगरचे इस्लाम मुतअद्दिद क़ौमों में फैला हुआ है और वो सब मिलकर एक क़ौम इस्लाम के मातहत हैं। मगर सब हालत-ए-इन्हितात (तनज़्ज़ुल, घटाओ) में पड़े हुए ज़िंदगी बसर कर रहे हैं।"

(रिसाला निगार लखनऊ माह मई 1928 ई॰)

यही साहब फिर लिखते हैं कि :-

"तमाम वो बातें जिनका असर हर क़ौम व हर ज़माने में आम नहीं वो सब मज़्हब के फ़रोग़ हैं और इस में अहकामात दीवानी व फौजदारी व जिहाद, क़ौमी मरासिम बल्कि तरीक़ा इबादात भी शामिल हैं। मज़्हब की अमली पाबंदी के लिए अगर एक शरीअत ज़रूरी है तो हम ये चाहते हैं कि इस्लामी दुनिया के अंदर हर क़ौम व हर ज़माने में अबू हनीफा पैदा हुआ करें जो अपने मुल्की हालात व मआशरत को पेश-ए-नज़र रख कर इज्तिहाद (कोशिश) करें। मगर पहली सदी हिज्री के अइम्मा के क़यासात को मज़्हब के आम उसूलों के साथ दवामी (हमेशा रहने वाला) समझना तब्लीग़ व इशाअत के लिए बहुत बुरा है और ख़ुद क़ौम इस्लाम की दुनियावी तरक़्क़ी का सद्द-ए-बाब है। ये ऐसी ग़लती है जिसका ख़मयाज़ा हमने अब तक उठाया है। यूरोप और अरब की नशिस्त व बर्ख़ास्त व लिबास में ज़मीन व आस्मान का फ़र्क़ है। अरब अपनी मस्जिद में ज़मीन पर बैठ कर आसानी से इबादत कर

सकता है, मगर यूरोप कुर्सी का आदी है। क्यों ना यूरोप का अबू हनीफा इबादत का तरीक़ा उनकी आदत के मुवाफ़िक़ इज्तिहाद करे। यूरोप के एक मशग़ूल कारोबारी से कहो कि वो मग़रिब के वक़्त जब कि वो अपने काम से राहत पाता है। या ज़ुहर के वक़्त कोई नमाज़ अदा करे और इसी पर उस के इस्लाम का इन्हिसार हो तो वो क्यूँ-कर इस्लाम को फ़ित्री मज़्हब मान सकता है।"

(रिसाला निगार जून 1928 ई॰)

मुसलमानों में ये एहसास मुद्दत से है, मसलन एक रोशन ख़्याल मुसलमान मिस्टर अहमद ने अख़्बार पायोनीर मत्बूआ 14 नवम्बर 1908 में लिखा था :-

"मैंने एशिया, अफ़्रीक़ा, यूरोप की इस्लामी रियासतों की तारीख़ बड़ी एहतियात व तवज्जोह से मुतालआ किया है और नीज़ अंग्रेज़ी क़ौम की तारीख़ का भी। मैं हिंदुस्तान में पैदा हुआ और यहीं परवरिश पाई। इस्लामी तबीयत के रंग व मिलान से मैं वाक़िफ़ हूँ और जिस नतीजे पर मैं पहुंचा हूँ वो ये है, इस्लाम में तग़य्युर (बदलाव) का ख़्याल ही नदारद (नेस्त व नाबूद होना) है और इसलिए तरक़्क़ी का जोहर भी मफ़्क़ूद (मालूम ना होना) है और यही बाइस है, कि कोई इस्लामी क़ौम इस क़ाबिल ना हुई कि तरक़्क़ी की एक हद मुईन तक पहुंच कर आगे क़दम बढ़ा सके। इस्लाम से तवक़्क़ो की जाती है कि वो हमारी इस ज़िंदगी के मुआमलात में हमारे तर्ज़-ए-अमल की हिदायत के लिए जुज़ई और तफ़्सीली क़वाइद भी सिखला दे। इस्लामी सोसाइटी की

बुनियाद इस ख़्याल पर है कि जो कुछ इन्सान को दरकार था सब हमारे पास मौजूद है। जो कुछ मिलना था आस्मान से नाज़िल हो चुका है। हमारी सारी शामतों मुसीबतों का बाइस यही है और हमारे ज़वाल और अनहिता और अंजाम-कार नामुरादी का भी यही बाइस है कि हम अपने क़वानीन व इंतज़ामात को कामिल तसव्वुर कर बैठे और नाक़ाबिल तब्दील व तरमीम। कितनी दफ़ाअ हमने कोशिश की मगर क़ासिर रहे इस क़ानून की नज़र-ए-सानी कर लें, जो सूद लेने देने के ख़िलाफ़ है या उस क़ानून की जिसकी बदौलत मालिक के मरते ही जायदाद के तुक्के बोटी लग जाते हैं। इन्हीं वजूह से कस्रत इज़्दवाजी (एक से ज्यादा निकाह) आज तक बरक़रार है और गुलामी भी, बांदियों का बिला-नकाह (बगैर निकाह) हरम बना लेना भी। और यह हमारे मुआशरती इंतिज़ाम के गोया जुज़्व-ए-आज़म बन गए हैं। शौहर के इख़्तयारात तलाक़ के आगे कोई रोक नहीं मगर ज़ौजा (बीवी) को मुतलक़ हक़ नहीं कि वो जुदाई की तलबगार हो सके। मुसलमानों को इस रुपया पर सूद माँगना हराम जो क़र्ज़ में दिया गया इसलिए दीगर सारी कौमें दौलतमंद होती जाती हैं। हत्ता कि ज़र सरासर दीगर क़ौमों के हाथों में आ गया। मैं दिलेरी के साथ अलानिया पुकार कर कहे देता हूँ कि हरगिज़ कोई तरक़्क़ी नहीं हो सकती तावक़्त ये कि हम ये देखने लग जाएं कि अस्लुल-उसूल और अबदी दीनी व अख़्लाकी सदाक़तें सिर्फ वही हैं। जिनकी तल्क़ीन मक्का शरीफ़ में की गई थी लेकिन वह क़वानीन जो मदीना-उन्नबी में मुक़र्रर हुए थे वो सिर्फ़ अहले अरब के लिए मौज़ूअ थे और इब्तिदाई क़ुरून इस्लाम के लिए मौज़ूअ हुए थे।”

मिस्टर अहमद के इस ख़त का जवाब 28 नवम्बर के पायोनीर में एक और मुसलमान मिस्टर अस्करी ने दिया। लेकिन उसने भी अंजाम-कार वही बात कही जो मिस्टर अहमद ने कही थी और अपने अल्फ़ाज़ में यूं अदा की,

> "मज़हबी और अख़्लाक़ी सदाक़तें इस्लाम की अस्लुल-उसूल और अबदी सच्चाईयां हैं मगर इस्लाम में जो क़वानीन और मुआशरती निज़ामात हैं जिनकी नबी साहब ने बेशतर अपने ज़माने के अहले अरब की हिदायत की ख़ातिर तल्क़ीन की थी वो क़ाबिल-ए-तब्दील हैं।"

यहूदी आलिम डाक्टर मॉन्टी फ़ेअरी हमको बताता है कि "यहूदीयत में भी बईना यही दो अंसर थे। यानी ख़ुदा की वहदानीयत और अख़्लाक़ी ताअलीम एक तरफ़ और क़ौमी क़ुयूद मरासिम दूसरी तरफ़ और मोअख़्खर-उल-ज़िक्र अम्र इस मज़्हब के आलमगीर होने में सद-ए-राह (मानेअ होना, रोक बनना) साबित[19] हुआ।" और यही क़ौमी क़ुयूद इस्लाम को आलमगीर होने से रोकते हैं।

19 Synoptic gospel.vol.1 ppcx111.

(5)

मौलाना अब्दुल माजिद बी॰ ए॰ मरहूम मौलाना मुहम्मद अली के अख़्बार "हमदर्द देहली" में बउनवान "हमारी बेबसी" ये सवाल पूछते हैं और फ़रमाते हैं :-

> "हमको मज़हबी आज़ादी हिन्दुस्तान में हासिल है इस का अंदाज़ा रोज़मर्रा की चंद मिसालों से फ़रमाईये। हम में से एक शख़्स हरामकारी का मुर्तक़िब होता है। इस के बाद वो अपने तईं हद्द-ए-शरई के लिए पेश करता है क्या क़ानून वक़्त हमको इस की इजाज़त देगा कि हम उसे संगसार करें? एक मुसलमान चोरी करता है। दूसरे मुसलमान उस का हाथ काट डालना चाहते हैं। क्या इस इस्लामी सज़ा देने के बाद वो मुसलमान ख़ुद सरकारी मुजरिम ना क़रार पा जाएंगे? शराब की आज़ादाना तिजारत और आबकारी व अफ़ीयुन के महिकमों को मुसलमानान हिंद अगर तोड़ना चाहें तो अज़रूए क़ानून तोड़ सकते हैं?"
>
> (19 फरवरी 1925 ई॰)

क्या इस क़िस्म का इज़तिरार (बेक़रारी, बे-अख़्तियारी) और बेचैनी ये साबित नहीं करती कि इस्लामी क़वानीन आलमगीर नहीं हैं। आज कौनसी मुहज़्ज़ब सल्तनत ज़िनाकारी की सज़ा संगसारी और चोरी की सज़ा क़ता यद सारिक़ (हाथ काट देना) तज्वीज़ करेगी। ये क़वानीन रसूल अरबी के ज़माने

के अहले अरब के लिए निहायत मौज़ूं थे। लेकिन चूँकि वो इब्तिदाई क़ुरून इस्लाम के लिए मौज़ू हुए थे। चौदह सौ (1400) साल के बाद दौर-ए-हाज़रा के हालात पर इनका इतलाक़ नहीं हो सकता।

(6)

गुज़शता चंद सालों के दौरान में हिन्दुस्तान के मुस्लिम अख़बारात में इस बात पर बड़ी ले दे रही है कि मुसलमान औरत को ये इजाज़त नहीं होनी चाहिए कि वो मज़्हब इस्लाम को तर्क करके कोई दूसरा मज़्हब अपने निकाह को फ़स्ख़ (मंसूख करने, इरादा तोड़ने) कराने की ख़ातिर इख़्तियार कर सके। बेचारी औरत ज़ात से इस्लाम ने तलाक़ देने का हक़ पहले ही छीन रखा था। पस उस के लिए तलाक़ हासिल करने के लिए एक ही राह खुली थी कि वो ऐसे मज़्हब को तर्क करके ख़ावंद (शौहर) की गुलामी से नजात पाए। लेकिन अब अहले इस्लाम ने शोर व गुल मचा कर हकूमत-ए-हिन्द से क़ानून पास करवा कर औरत के लिए ये राह इफ़रार भी बंद करवा दी है। इस क़ानून के पास कराने की जद्दो जहद के सिलसिले में मौलवी मुही उद्दीन अहमद साहब बी॰ ए॰ ने एक मज़्मून रिसाला “पयाम इस्लाम” जालंधर के (जनवरी 1935 ई॰) नंबर में लिखा। इस में मौलवी साहब मौसूफ़ लिखते हैं :-

> “आजकल तमाम मुस्लिम अख़बारात में औरतों के निकाह को फ़स्ख़ (मन्सूख) कराने के लिए तब्दील मज़्हब करने पर एक बजा शोर बपा (बरपा) है। और इस फित्ने को रोकने के लिए मुख़्तलिफ़ तदाबीर पेश की जा रही हैं। इस वक़्त सबसे ज़्यादा इजतिमा आराअ् इस अम्र पर हो रहा है कि हुकूमत अंग्रेज़ी से एक ख़ास मुसव्वदा क़ानून इस बारे में मंज़ूर कराया जाये जिससे इस फ़ित्ने का सद-ए-बाब (दरवाज़ा बंद) हो सके।.... ये मसअला दरअस्ल मुसलमानों की मौत व ह्यात का मसअला है।”

मेरा नाक़िस ख़्याल ये है कि जहां तक तज्वीज़ कर्दा राह की सेहत का ताल्लुक़ है मुझे ख़ौफ़ है कि, ये कीं राह कि तोमी रवी बतरकस्तान अस्त का मिस्दाक़ है।

अगर हम एक मर्ज़ का ईलाज करते हुए एक दूसरे शदीद तरीं मर्ज़ को ख़रीद लें। तो उसे सही चारागरी नहीं कह सकते। उम्मत मुस्लिमा का ये मुत्तफ़िक़ा और मुत्तहदा फ़ैसला है कि मिल्लत को अपनी मज़हबी तकालीफ़ के सिलसिले में जिन का ताल्लुक़ हमारे पर्सनल ला यानी (शरीअत-ए-मुहम्मदी) से हो। ख़्वाह वो तकालीफ़ कितनी ही संगीन क्यों ना हों। हुकूमत का दरवाज़ा खटखटाना और बज़रीया क़ानून राइज-उल-वक़्त उस की चारागरी की सई करना ना सिर्फ इंतिहा दर्जा की हमीयत (ग़ैरत) दुश्मनी बल्कि शदीद तरीं नताइज सीइआ का बाइस है। इसलिए ये राह कभी इख़्तियार नहीं करनी चाहिए। चुनान्चे जिन लोगों के दिलों में शारदा ऐक्ट की याद अभी ताज़ा है।

उन्हें ज़रूर ये भी याद होगा। कि उलमाए किराम की एक जमाअत कसीर शारदा ऐक्ट को मसालिह मिल्लियह (क़ौमी नेकी) के लिए मुफ़ीद समझने के बावजूद उसे क़ुबूल करने से इन्कार करती थी। मुझे माफ़ किया जाये, अगर मैं ये अर्ज़ करूँ कि मौजूदा मसअले में हुकूमत से एक क़ानून बनाने का मुतालिबा भी ऐसा ही मुतालिबा है जो अपने नताइज की दूर रस्सी के लिहाज़ से कहीं ज़्यादा वसीअ और कहीं ज़्यादा ख़तरनाक है। इसलिए इस मुतालिबे से जिस क़द्र भी जल्दी हम लोग दस्त-बरदार हो जाएं उसी क़द्र बेहतर होगा।.....

एक मुसलमान को मुसलमान होते हुए अपने अवारिज़ (आरिज़ा की जमा, पेश आने वाली चीज़ें, मर्ज़, दुख, बीमारीयां) के लिए सिर्फ किताब व सुन्नत ही के दरवाज़े खटखटाने की ज़रूरत है।

लेकिन आज हमारी सबसे बड़ी मुसीबत ये है कि मुसलमानों का एक बहुत बड़ा फ़रीक़ इस राह से बहुत दूर जा पड़ा है। उस के नज़्दीक फिक्रो इज्तिहाद का दरवाज़ा हमेशा के लिए बंद हो चुका है ज़रूरीयात-ए-हाज़रा के पेश-ए-नज़र फ़िक़्ह जदीद की तदवीन यक तरफ़। उन हज़रात के अक़ीदे में क़दीम फ़िक़्हों में इंद-अल-ज़रुरत तरमीम व तंसीख़ (रद्दो बदल) या हक

(खुरचना, मिटाना) व इज़ाफ़े का ख़्याल भी गुनाह-ए-अज़ीम है। और मुआमला यही तक ख़त्म नहीं हो जाता, बल्कि इस गिरोह के ख़्याल में क़ौल

राहज देखने का हक़ भी बजुज़ चंद निहायत ही मख़्सूस सूरतों के इस बद-नसीब उम्मत को हासिल नहीं और इस चार-दीवारी से बाहर क़दम रखना ही जो फ़ुक़हा-ए-मताख़रीन की चंद किताबों को चुन कर बनादी गई है। नाक़ाबिल मआनी जुर्म है।..... नतीजा ये हुआ कि ख़ुदा की ये शरीफ़ व लतीफ़ मख़्लूक़ यानी औरत। तमाम जायज़ और फ़ित्री हुक़ूक़ से यकसर महरूम हो गई। इब्तिदा ज़माने में फ़ुक़हा-ए-मताख़रीन के फ़ैसले असली मर्कज़ से और ज़्यादा दूर जा पड़े। हिन्दुस्तान में हिंद वला और हिंदू रसूम व आयन की पैदा-कर्दा फ़िज़ा ने औरत की इस मज़लूमियत को और ज़्यादा कर दिया और औरत हुक़ूक़-ए-विरासत तक से जो मज़ाहिब की तारीख़ में इस्लाम की मख़्सूस और मुस्तसना ख़ुसूसीयत थी महरूम हो गई। और अब अह्द हाज़रा के जुमूद (जम जाना) दिमाग़ी ने उसे एक लाइलाज मर्ज़ की शक्ल दे दी है। मौजूदा अदालतों में मुसलमानों के पर्सनल ला की सारी मताअ़ मताख़रीन फुक़हा की चंद किताबें ही रह गई हैं, इसलिए वो भी औरत को रोज़-अफ़्ज़ूँ तकालीफ़ का ईलाज करने से क़तअन क़ासिर हैं।

पस औरत जब अपने आपको मर्द के ज़ालिमाना पंजों में इस क़द्र मज्बूर महसूर (मुक़य्यद, क़ैद) पाती है तो वो अपनी मख़लिसी (छुटकारे) के लिए साया आतिफ़त (मेहरबानी) मुहम्मदी छोड़कर दूसरे गोशों में पनाह लेती है और कौन कह सकता है कि ये तदबीर (फ़स्ख़ निकाह के लिए तब्दील मज़्हब) भी कुतुब फ़िक़्ह के बाब अल-हील में से एक इंतिखा\ब कर्दा हीला नहीं?

पस मैं पूरे अदब और पूरे ज़ोर के साथ अर्ज़ करूँगा कि इस फ़ित्ने की रोक-थाम का ये तरीक़ा नहीं है कि हुकूमत वक़्त के पांव पड़ कर एक क़ानून बनवा लिया जाये। अव्वल तो उलमाए किराम की तरफ़ से ऐसा मुतालिबा शरीअत कामिला इस्लामीया की तौहीन है। क्योंकि ये मुतालिबा नए क़ानून का मुतालिबा ना होगा बल्कि ये शरीअत हक़्क़ा इस्लामीया के नुक़्स व ख़ामी का खुला हुआ एतराफ़ होगा। दूसरे शरीअत-ए-इस्लामी कभी गवारा नहीं कर सकती कि आप अपनी जरूरतों के लिए दूसरों का दरवाज़ा खटखटाएं तीसरे असैंबली में जो क़ानून भी मुरत्तिब हो कर मंज़ूर होगा, उस की बुनियाद कुछ ना कुछ ज़रूर मग़रिबी उसूलों पर रखी जाएगी, जो हमारे लिए मुफ़ीद ना होगी। नीज़ ऐसा क़ानून बनवाकर आप फ़ित्ने का ऐसा बाब खोल देंगे जो हज़ारों ऐसी बुराईयों को पैदा करने वाला और उम्मत मुस्लिमा के वजूद-ए-नातवां के लिए बमंज़िला नासूर के साबित होगा। ख़ुदारा आप थोड़ी देर के लिए ग़ौर करें कि अगर आपकी ये मुश्किल बग़ैर अंग्रेज़ी हुकूमत के तैयार

कर्दा क़ानून के हल हो नहीं सकती। तो आपकी इस क़िस्म की दूसरी सदहा मुसीबतों और कश्मकशों का क्या बनेगा जो वजूद-ए-मिल्लत को घुन की तरह खा रही हैं? क्योंकि ऐसी तमाम सूरतों में ख़ुदा और रसूल का दिया हुआ क़ानून आपके हाथों बेकार साबित हो रहा है। क्या ऐसे हर मुक़ाम पर आप इस ख़ुदाई क़ानून व शरीअत को छोड़कर हुकूमत से क़ानून बनवाते चले जाऐंगे। ता आंकी शरीअत बिल्कुल ख़त्म हो जाए।.....

क्या आप भी हिंदूओं की तरह हुकूमत-ए-वक़्त से इस्तिमदाद (इमदाद, मदद तलब करना) हासिल करेंगे। और इस चीज़ को अमलन तस्लीम करेंगे कि हिंदू मज़्हब की तरह आपकी शरीअत का दामन भी इन चीज़ों से ख़ाली है। ग़रज़ ये कि आपकी मुसीबतों का कभी और कहीं ख़ातिमा ना होगा।.....

फ़र्ज़ करो कि आप ऐसा क़ानून बनवाने में कामयाब हो गए तो क्या आप इस क़ानून के ज़रीये मर्दों की बे-राह रवी। उनकी बे रोक नफ़्स परस्ती और हवसनाक (लालची) उनके ग़ैर महदूद तफ़व्वुक़ (फ़ौक़ियत) व बरतरी के ख़िलाफ़ इस्लाम एतिक़ाद को भी रोक सकेंगे? जिसने घर की चार-दीवारी को औरत के लिए ख़ौफ़नाक क़ैदख़ाना बल्कि जहन्नम बना रखा है। जिसने हमारी मंज़िल ज़िंदगी को बिल्कुल तबाह व बर्बाद कर रखा है और जिसने आज हमारी इजतिमाई (सोशियल) ज़िंदगी पर एक गोना मौत तारी कर रखी है।.....

मैं कहता हूँ कि ये फ़ित्ना इन हालात का क़ुदरती और तिब्बी नतीजा है जो आपने सदीयों में अपने गिर्द व पेश जमा कर रखे हैं। ये ख़ुदा का वो क़ानून इंतिक़ाम है, जो मुसलमानों की इस बद-आमाली की पादाश (बदला, मुआवज़ा) में जो वो औरत को उस के तमाम जायज़ फ़ित्री ख़ुदा के बख़्शे हुए हुक़ूक़ से महरूम कर देने की शक्ल में कर रहे हैं इस अज़ाब ईलाही की सूरत में नाज़िल हो रहा है।.....

ज़रूरीयात व मकतज़ियात (तक़ाज़ा किया गया) मुआशरती व मआशी के पेश-ए-नज़र मर्द को कारफ़रमाई और सरबराही का एज़ाज़ बख़्शा गया था जो ग़सब-ए-हुक़ूक़ और तज़ल्लुम की शक्ल इख़्तियार कर गया। बदनसीब मुस्लिम औरत बदतरीन क़िस्म की लौंडी मुतसव्वर होने लगी। मर्द ने जहां अपनी ख़ुद-गरज़ाना काम जो यूं के लिए अपने ऊपर तफ़रीक़ और तब्दीली की तमाम राहें खोल रखी हैं। वहां ग़रीब औरत पर अलैहदगी और तफ़रीक़ के वो तमाम जायज़ और फ़ित्री दरवाज़े भी बंद कर दिए हैं। जो इस्लाम ने उस पर खोले थे। औरत जब अपने मंज़िली हालात से मज्बूर हो कर अदालत का दरवाज़ा खटखटाती है तो वो क़ानून भी जो अदालत अंग्रेज़ी के अंदर पर्सनल ला कहलाता है इस की दस्त-गीरी से क़ासिर रहता है। लामुहाला (नाचार, यक़ीनन) उसे दूसरी राहों की तलाश करनी पड़ती है। पस ये ख़ुदा के अटल क़ानून इंतिक़ाम के ऐन मुताबिक़ है, जो हमेशा मुख़्तलिफ़ हालात में नस्ल-ए-

इन्सानी पर उस की बद-आमालीयों के मुताबिक़ मुख़्तलिफ़ शक्लों में नाज़िल हुआ है।

मैं ये पूछता हूँ कि जब आप औरत पर नामुवाफ़िक़ मुसाहबत (साथ उठने बैठने) से मख़लिसी और नजात की तमाम राहें बंद करते हैं तो क्या नीयत की एक क़ैद लगाकर आप इस पर इस्लाम का दरवाज़ा हमेशा के लिए बंद नहीं कर रहे? मौजूदा सूरत में कम अज़ कम पच्चास (50) साठ (60) फ़ीसद केसेज़ ज़रूर ऐसे हैं जो इस हीला से तलाक़ हासिल करने के लिए बाद इस्लाम की मुक़द्दस आग़ोश में फिर वापिस आ जाते हैं। लेकिन जब आपके मुतालिबा के मुताबिक़ नीयत ही मदार-ए-फ़ैसला क़रार पाएगी तो ऐसे पच्चास (50) फ़ीसदी केसेज़ की वापसी भी ना-मुम्किन हो जाएगी। ये फ़ित्रत की वही बग़ावत होगी, जिस पर आप उसे ज़रूरत से ज़ाएद (ज़्यादा) दबाकर बाकिरा (कुँवारी लड़की) मज्बूर करेंगे।.....

वो हुक़ूक़ जो मर्द ने अज़-राह-ए-जबर व तशद्दुद ग़सब कर दिए हैं औरत को वापिस दिलाएँ। ना-मुवाफ़िक़ और ना-साज़ गार इज़्दवाजी ज़िंदगी की सूरत में औरत पर साबिक़ा पैवंद से मख़लिसी और नजात और आइन्दा आज़ादाना हक़ इंतिखाब की तमाम राहें खोल देनी चाहिऐं। उलमा-ए-इस्लाम को निहायत आज़ादी के साथ मुत्तफ़िक़ा तौर पर इस अम्र का ऐलान करना

चाहिए कि आइन्दा के लिए निकाह व तलाक़ वग़ैरह मुआमलात में उनका मदार अमल फ़िक़्ह की वो चंद कुहना (पुराना) जज़ईयात ना होंगी जो इस्लाम की दावत के कई सौ साल बाद बाअज़ मख़्सूस हालात के मातहत चंद दिमाग़ों ने तर्तीब दे दीं, और जिन्हें आज वक़्त व मतक़्सिनियाते वक़्त ने बिल्कुल बेकार बल्कि मुज़िर साबित कर दिया है।

(7)

सय्यद मक़्बूल अहमद साहब, मौलाना अब्दुल माजिद साहब और मौलवी मुही-उद्दीन साहब जैसे अस्हाब की ज़हनीयत को मद्द-ए-नज़र रखकर लिखते हैं :-

> "जनाब मुहम्मद ﷺ हज़रत मूसा की तरह एक तरफ़ हामिल-ए-इस्लाम थे तो दूसरी तरफ़ वो अरब क़ौम के साहिब-ए-शरीअत व अम्र भी थे। जो क़ुरआन उनको दिया गया उस का एक हिस्सा अगर मज़्हब इस्लाम के आलमगीर मार्फ़त एतिक़ाद से मख़्सूस था तो दूसरा हिस्सा मिल्लत अरब के अहया दुनियवी के लिए मगर हमने कभी इस पर ग़ौर ना किया कि एक का मुख़ातब तमाम आलम है और दूसरे का सिर्फ इस ज़माने के अरब। यानी उस का एक हिस्सा अज़ली व इंतिहाई पहलू लिए हुए था। जिसमें इबादत हक़, ख़िदमत-ए-हक़, तज़किया नफ़्स, एतिक़ाद तौहीद व मआद पर मुश्तमिल था और दूसरा हिस्सा ज़मानी व मकानी यानी वक़्ती व अरब के लिए मख़्सूस था। जिसमें तहारत-ए-जिस्म

व लिबास, मुआशरत के बाअज़ उसूल मसलन इज़न लेकर दूसरे के घरों या ख़ल्वत में जाना, औरतों को बे-हयाई के साथ मर्दों के सामने आने की मुमानिअत, विरासत, **इज़्दिवाज व तलाक़ या ताअज़ीरात** मसलन क़ता यद सारिक़ (चोर के हाथ काटना) वग़ैरह को महज़ बतौर एहसान मज़ीद के बता दिया और ना इल्हाम दर-हक़ीक़त इन मुआमलात की ताअलीम के लिए मुकल्लिफ़ (तक्लीफ़ देने वाला) नहीं।"

(रिसाला निगार माह मई 1928 ई॰)

हज़रत नयाज़ मुदीर रिसाला निगार फ़रमाते हैं :-

"हर तरक़्क़ी करने वाले मज़्हब की जान वुसअत-ए-नज़र व खयाल है। यानी जब तक उस की आग़ोश वसीअ ना होगी तरक़्क़ी मुम्किन नहीं और उस की आग़ोश की वुसअत यही है कि शरीअत-ए-मज़्हब को आसान और पाबंदीयों को कम किया जाये, नाम व मकाम वज़ाअ व लिबास, मुआशरत व मईशत वग़ैरह सबसे बेनियाज़ हो कर इस्लाम के दायरे को वसीअ करना चाहिए।"

(रिसाला निगार मई 1928 ई॰)

पस रोशन ख़्याल मुसलमान हमारे इस दाअवे की तस्दीक़ करते हैं कि क़ुरआनी शराएअ (शरीअत की जमा) मुल्क व कौम अरब से मुख़तस (ख़ास) हैं और इनका इतलाक़ दुनिया के दीगर ममालिक पर नहीं हो सकता। ब-

अल्फ़ाज़-ए-दीगर क़ुरआनी अहकाम और इस्लामी शरीअत में आलमगीर होने की सलाहीयत नहीं है।

फ़स्ल हफ़्तुम

क़ुरआन ग़ैर मुकम्मल किताब है

हमने अपनी किताब **"मसीहीय्यत की आलमगीरी"** के बाब दोम में मसीहीय्यत की जामईयत पर मुफ़स्सिल बहस की है और अपनी किताब **"कलिमतुल्लाह की ताअलीम"** में शरह और बस्त (वज़ाहत) के साथ इंजील जलील की ताअलीम के उसूल पर नज़र करके ये साबित किया है कि मसीहीय्यत एक जामेअ मज़्हब है। और कलिमतुल्लाह के उसूल कामिल और आलमगीर हैं और दुनिया के हर मुल्क व कौम के रहनुमा होने की सलाहीयत रखते हैं।

(2)

अहले क़ुरआन के दआवे

इस के बरअक्स जब हम क़ुरआन शरीफ़ का मुतालआ करते हैं तो हम पर ज़ाहिर हो जाता है कि वो एक ग़ैर-मुकम्मल किताब है। क़ुरआन तो ये दाअवा करता है कि वो :-

وَتَفْصِيْلَ كُلِّ شَيْءٍ

“हर शैय की तफ़्सील है।” (यूसुफ़ आयत 111)

وَكُلَّ شَيْءٍ فَصَّلْنٰهُ تَفْصِيْلًا

“इस में हर एक चीज़ को हमने (ख़ुदा ने) खोल कर बयान कर दिया है।” (बनी-इस्राईल आयत 12)

هُوَ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ اِلَيْكُمُ الْكِتٰبَ مُفَصَّلًا

“उसी ने (ख़ुदा) ने तुम्हारी तरफ़ (ऐ मुहम्मद) मुफ़स्सिल किताब नाज़िल की है।” (अनआम आयत 114)

وَنَزَّلْنَا عَلَيْكَ الْكِتٰبَ تِبْيَانًا لِّكُلِّ شَيْءٍ

“वो किताब नाज़िल की जो हर एक चीज़ को बयान कर देने वाली है।”

(नमल आयत 89)

इन दआवो का मतलब साफ़ है कि इस किताब में हर शैय की तमाम तशरीहात और तफ़सीलात मौजूद हैं। लेकिन मज़ामीन किताब इन दआवा की तस्दीक़ नहीं करते। ये एक ऐसी वाज़ेह हक़ीक़त है कि बइस्तसना-ए-चंद अफ़राद तमाम दुनिया के मुसलमान मानते हैं कि :-

“क़ुरआन शरीफ़ को समझने के लिए हम हदीस के मुहताज हैं।”

(मुक़ाम हदीस सफ़ा 22)

अहले इस्लाम में मुट्ठी भर आदमी हैं जो क़ुरआन की मज़्कूर बाला आयात को अपनी ख़ुश-फ़हमी की वजह से हक़ समझते हैं और कहते हैं, "हदीस की तशरीह व तफ़सील किताब अल-मजीद के सरासर ख़िलाफ़ है।..... वो एक निहायत ही क्रय-उल-नज़र बदसूरत, ज़िश्त रू, बदशक्ल मस्नूई (खुदसाख्ता) चीज़ है इस को रसूल अरबी से कोई ताल्लुक़ नहीं। आपकी वफ़ात से सैंकड़ों बरस पीछे बाअज़ ख़ुद-ग़रज़ लोगों ने अज़ ख़ुद ये हज़िल्लीयात (बेहूदा बात) घड़ लीं और स्याह दिली से उनको नाहक़ मुहम्मद अरबी के ज़िम्मे लगा दिया है। ये काम ज़्यादा-तर बाअज़ यहूदी व नसारा दुश्मनाँ इस्लाम[20] का मालूम होता है। जिन्हों ने इस्लाम की बेख़कुनी की ये बेहतरीन राह सोची कि वो मुसलमानी के लिबास में लोगों को क़ुरआन हकीम की तरफ़ से हटा कर और तरफ़ लगा दें।"

(मौलवी अब्दुल्लाह चक्ड़ाल्वी दर-ज़कात वल-सदक़ात सफ़ा 12)

"क़ुरआन मजीद जुम्ला अहकाम व तमाम मसाइले दीन-ए-इस्लाम के बारे में मुबाह (हलाल) तक भी हर तरह कामिल, मुकम्मल, मुफ़स्सिल मुशर्रेह काफ़ी शाफ़ी वाफ़ी आफ़ी है।"

---

20 शायद यह फिक़रा इस क़ुरआनी आयत की तफसीर-उल-क़ुरआन ब-अयात-उल-फुर्क़ान है जिस में ज़िक्र है لتجدن اقربهم مودة للذين امنوا الذين قالوا انا نصرىٰ यानी तुम सब लोगों में दोस्ती के एतबार से मुसलामानों से इन को क़रीबतर पाओगे जो कहते हैं हम नसारा हैं (माइदा रुकू 11)

(मुनाज़रा माबैन मौलवी अब्दुल्लाह चक्ड़ाल्वी व मौलवी इब्राहिम सयालकोटी सफ़ा 18)

> "इस्लाम की हर एक चीज़ मिन कल-उल-वजूद (من كل الوجود) मुफ़स्सिल व मुशरह तौर पर बयान की गई है तो अब वही खुफ़ीया हदीस की क्या हाजत रही बल्कि उस का मानना और दीन इस्लाम में इस पर अमल दरआमद करना सरासर कुफ़्र शिर्क ज़ुल्म फ़िस्क़ है।" (मुनाज़रा सफ़ा 19)

> "चूँकि ये किताब (क़ुरआन) जामेअ तर्बीयत जिस्मानी व ईमानी है पस जो मसाइल तक्मील तर्बीयत-ए-जिस्मानी व ईमानी के लिए ज़रूरी और ला बदी हैं वो सब के सब क़ुरआन मजीद में मुशर्रेह और मुफ़स्सिल हैं। मसलन इबादत (मालिया, बदनीया, मरकबा, एतिक़ादयह, कोलयह अम्लीयह उमूमन व खुसुसन) सब मुआमलात व फ़रोअ एतिक़ादियात व अमलियात वग़ैरह वग़ैरह।

(तर्जुमा-तुल-क़ुरआन बअयात-उल-फ़ुरक़ान मुसन्निफ़ मौलवी अब्दुल्लाह चक्ड़ाल्वी जिल्द अव्वल सफ़ा 3)

> "कलाम उल्लाह जो हुज़ूर सरवर-ए-कायनात ﷺ की तरफ़ वही किया गया एक ऐसा मुबय्यन व मुफ़स्सल दस्तूर-उल-अमल (क़ायदा क़ानून, क़ानून की किताब) है जिसके होते हुए किसी और वही की मुतलक़ ज़रूरत नहीं रहती।"

(दीबाचा बुरहान-उल-क़ुरआन, मुनाज़रा माबैन मौलवी सनाउल्लाह और मौलवी अहमद दीन)

(3)

क़ुरआन ग़ैर-क़ुरआन का मुहताज है।

जिस शख़्स ने क़ुरआन को सरसरी नज़र से भी देखा है वो जानता है कि अहले क़ुरआन के ये जुम्ले दआवे कुल्लियतन ग़लत और महज़ बे-बुनियाद हैं। चुनान्चे ख़ुद उलमा-ए-इस्लाम ने सिर्फ मिसाल के तौर पर चंद एक मसाइल मरहूम मौलवी अब्दुल्लाह साहब और उन के हम ख़यालों के पेश किए और पूछा कि बतलाओ इनका ज़िक्र मुफ़स्सिल और मुशर्रेह तौर पर क़ुरआन में कहाँ है? मसलन उन्हों ने दर्याफ़्त किया कि नमाज़ के फ़रीज़े की तफ़्सील क़ुरआन में कहाँ आई है? यानी नमाज़ कितनी दफ़ाअ और किस-किस वक़्त पढ़नी चाहिए मुख़्तलिफ़ नमाज़ों की रकअतों का तअय्युन क्या है? सज्दों की तादाद क्या है? तक्बीर कहते वक़्त कान पकड़ने का हुक्म कहाँ है? वग़ैरह वग़ैरह। लेकिन सिर्फ नमाज़ की तशरीह के मौलवी अब्दुल्लाह साहब को चार-सौ से ज़ाइद सफ़्हों की किताब "बुरहान-उल-फ़ुरक़ान अला सलवात-उल-क़ुरआन" (برہان الفرقان علیٰ صلواۃ القرآن) लिखने की ज़रूरत लाहक़ हुई। जिसमें ऐसे मज़हकाख़ेज़ दलाईल दिए गए हैं कि अगर कोई ग़ैर-मुस्लिम देता तो यक़ीनन

ये ख़्याल किया जाता कि वो क़ुरआन की हंसी कर रहा है। मसलन तक्बीर के वक़्त कान पकड़ने की निस्बत आपने क़ुरआनी आयत :-

فَصَلِّ لِرَبِّكَ وَانْحَرْ (٢)

"नमाज़ पढ़ अपने रब की और क़ुर्बानी कर।" (कौसर आयत 2)

को पेश किया। इस आयत का तर्जुमा ये है "नमाज़ पढ़ अपने रब की और क़ुर्बानी कर" लेकिन मौलवी साहब मरहूम इस का ये तर्जुमा करते हैं :-

> **"तू अपने रब की नमाज़ पढ़ा कर ख़ासकर (अपने वजूद के) ऊंट (कान) को ज़ब्ह (ज़लील व हक़ीर यानी पकड़ा) कर हर तक्बीर के साथ।"** (तफ़्सीर-उल-क़ुरआन बायात-उल-फ़ुरकान जिल्द सोम सफ़ा 45)

मरहूम का मतलब ये है कि "नहर" ऊंट की क़ुर्बानी को कहते हैं मगर यहां ज़िक्र ऊंट की क़ुर्बानी का नहीं बल्कि मुराद उस ऊंट की क़ुर्बानी से है जो इन्सान के वजूद में है। इन्सानी वजूद का ये ऊंट इन्सान का कान है क्योंकि जिस तरह ऊंट से फ़ायदा पहुंचता है उसी तरह कान से भी बहुत नफ़ा पहुंचता है। और कान के ज़ब्ह करने से मुराद उस का ज़लील करना यानी पकड़ना है पस साबित हो गया कि नमाज़ में हर तक्बीर के वक़्त कान पकड़ने का हुक्म मुफ़स्सिल और मुशर्रेह है। (सफ़ा 295 ता 308) क्या कभी किसी ग़ैर-मुस्लिम ने क़ुरआन को कभी इस तरह शिकंजा में खींचा है?

(4)

मौलाना सनाउल्लाह साहब ने मौलवी अहमद उद्दीन साहब अमृतसरी से मुख़ातब हो कर बैतुल-मुक़द्दस यरूशलेम के क़िब्ला होने की मुताल्लिक़ आयत :-

وَمَا جَعَلْنَا الْقِبْلَةَ الَّتِي كُنْتَ عَلَيْهَا

यानी "ऐ मुहम्मद जिस क़िब्ला बैतुल-मुक़द्दस पर तू था हमने उस को इसलिए मुक़र्रर किया था ताकि ताबईन को ग़ैर-ताबईन से जुदा कर दें।"

(बक़रह आयत 143)

पेश करके कहा :-

"मुझ नाक़िस-उल-इल्म को क़ुरआन मजीद में ऐसा कोई फ़िक़्रह नहीं मिलता जिसमें ये हुक्म हो कि बैतुल-मुक़द्दस की तरफ़ नमाज़ पढ़ो जिससे इस हिकायत का हुक्मी अन्हु मिल सके। आप क़ुरआन मजीद में इन अहकाम की तलाश में कामयाब हो जाएं तो मैं आपकी इत्तिला पहुंचने पर मशकूर हूँगा।..... क़ुरआन मजीद में कुत्ते की हुर्मत के लिए कोई ख़ास हुक्म नहीं। शायद आप तलाश में कामयाब हो जाएं।"

(बुरहान-उल-क़ुरआन सफ़ा 9)

सवाल अव्वल के जवाब में मौलवी अहमद उद्दीन साहब ने दानीएल नबी की किताब का हवाला दिया जो क़ुरआन में नहीं है। और कुत्ते के हराम होने के बारे में नाज़रीन की ज़याफ़त तबअ के लिए हम इन मौलवी साहब की दलील दर्ज करते हैं :-

> "ख़ुदा तआला ने हुर्मत की दो वजहें बताई हैं। एक रजस (पलीदगी) होना दूसरा फ़िस्क़ (ना-फ़र्मानी, गुनाह) होना।..... क़ुरान-ए-पाक का ये बयान सिर्फ उसी सूरत में साबित हो सकता है कि अगर अहले-किताब फ़ासिक़ (गुनाहगार) हों और शिकारी जानवर रजस समझे जाएं। अहले-किताब का फ़िस्क़[21] साबित है। पस इस से शिकारी जानवरों का ख़ुद रजस होना भी लाज़िम आता है। और रजस को ख़ुदा तआला ने हराम किया है। पस सिर्फ एक कुत्ता ही हराम नहीं बल्कि तमाम ज़ी नाब और ज़ी मख़लब हराम हैं।" (बुरहान-उल-क़ुरआन सफ़ा 20-21)

(5)

---

21 यह शायद इस आया क़ुरआनी की मौलवियाना तफसीर-उल-क़ुरआन ब आयत फुर्क़ान है जिस में मज़्कुर है कि, "یٰبنی اسرائیل اذکروا نعمتی التی انعمت علیکم وانی فضلتکم علی العالمین" "ऐ बनी इस्राइल मेरी उस नेअमत को याद करो जो मैंने तुमको बख्शी और यह कि सारे जहान के लोगों पर मैंने तुम को बुज़ुर्गी अता की आप क़ुरआनी आयत भूल गए "افمن کان مومناً کمن کان فاسقا لایستون" भुला जो मोमीन है क्या इस के बराबर हो जाएगा जो फ़ासिक़ है? हरगिज़ नहीं हो सकते (सज्दह आयत 18)

इसी तरह मरहूम मौलवी अब्दुल्लाह साहब से कहा गया कि क़ुरआन से दिखलाओ कि गधा हराम है। इस पर आपने ये दलील सुनाई, **"जो चीज़ रजस हो या फ़ासिक़ वो हराम है और मुताबिक़ आयत :-**

مَثَلُ الَّذِيْنَ حُمِّلُوا التَّوْرٰىةَ ثُمَّ لَمْ يَحْمِلُوْهَا كَمَثَلِ الْحِمَارِ يَحْمِلُ اَسْفَارًا

"यानी उनकी मिसाल जिन पर तौरेत लादी गई फिर उसे उन्होंने ना उठाया गधे की सी मिसाल है जो किताबें उठाता है।" (जुमआ आयत 5)

के गधा भी रजस में दाख़िल है "क्योंकि मुकज़बीन किताब अल्लाह को इस के साथ तम्सील दी गई है।"

(इशाअत-उल-क़ुरआन सफ़ा 32)

लेकिन इस आया शरीफा में गधे को हराम नहीं बतलाया गया बल्कि तौरेत शरीफ़ के झुटलाने वालों को बोझ उठाने के लिहाज़ से एक गधे से तश्बीह दी गई है। क्योंकि गधे का काम बोझ उठाना है। क़ुरआन अपनी मिसाल के लिए किस और लादू जानवर मसलन ऊंट वग़ैरह या किसी इन्सान हम्माल वग़ैरह के साथ तश्बीह दे सकता है। इस लिहाज़ से मरहूम मौलवी साहब की दलील के मुताबिक़ ऊंट और इन्सान हराम और नापाक साबित हो जाते मौलवी साहब अपनी ख़ुद-साख़्ता तफ़्सीर के ख़्याल में ऐसे मगन हैं कि वो तारीख़ी हक़ीक़त भूल गए कि ये आयत मदनी है और मुसलमान फ़त्ह ख़ैबर तक गधे का गोश्त बराबर खाते रहे। आपको इस बात का भी ख़्याल ना

रहा कि अगर गधा रजस है तो इस को छूना, घर में बतौर पालतू जानवर रखना, इस पर सवारी करना, इस पर बोझ लादना सब हराम हुए बल्कि जो बोझ अज़ क़िस्म अनाज अश्या-ए-ख़ुर्दनी वग़ैरह इस पर लादा जाये वो भी नापाक हुए।

मुंदरजा बाला दलाईल को पढ़ कर जिनका इल्म-ए-मंतिक़ व फ़ल्सफ़ा से दूर का भी वास्ता नहीं। हमको ग़रीब जमाअत अहले क़ुरआन की बेबसी और बेचारगी पर तरस आता है। वो क़ुरआन की हिमायत में उस की आयात को तोड़ मरोड़ कर अक़्ल-ए-सलीम को पायमाल करते हैं ताकि किसी ना किसी तरह से उनके दिल की हसरत निकल आए और क़ुरआन एक कामिल और मुफ़स्सिल किताब साबित हो जाए। क्योंकि उनके नज़्दीक :-

“क़ुरआन मजीद को मुजम्मल (मुख़्तसर, ख़ुलासा) कहना उस को कलाम-ए-ग़ैरुल्लाह साबित करना है।”

(तर्जुमा अल-क़ुरआन बअयात-उल-फ़ुरक़ान मुसन्निफ़ मौलवी अब्दुल्लाह चक्ड़ालवी जिल्द अव्वल सफ़ा 210)

लेकिन :-

ऐ बसा आरज़ू कि ख़ाक शूदा

(6)

सर सय्यद अहमद मरहूम ने भी कोशिश की कि क़ुरआन को कामिल किताब समझें। चुनान्चे आप फ़रमाते हैं :-

> "मैंने बक़द्र अपनी ताक़त के ख़ुद क़ुरआन मजीद पर ग़ौर की और चाहा कि क़ुरआन ही से समझना चाहिए कि इस का नज़्म किन उसूलों पर वाक़ेअ हुआ है और जहां तक मेरी ताक़त में था मैंने समझा और मैंने पाया कि जो उसूल ख़ुद क़ुरआन मजीद से निकलते हैं उनके मुताबिक़ कोई मुख़ालिफ़त उलूम जदीदा में ना इस्लाम से है और ना क़ुरआन से। फिर मैंने उन्हीं उसूल पर एक तफ़्सीर क़ुरआन मजीद की लिखनी शुरू की।"

लेकिन ये कोशिश ना बावर हो सकती थी और ना हुई क्योंकि सर सय्यद के अक़ीदत मंद दोस्त मरहूम नवाब अल-हसन अल-मलिक मौलवी सय्यद महदी अली ख़ां के अल्फ़ाज़ में :-

> "आपने क़ुरआनी आयतों को ऐसा माओल कर दिया है कि वो तावील ऐसे दर्जे पर पहुंच गई कि इस पर तावील का लफ़्ज़ भी सादिक़ नहीं हो सकता।..... ना सियाक़ कलाम ना अल्फ़ाज़ क़ुरआनी ना मुहावरात अरब से इस की ताईद होती है।"
>
> (तहरीर फ़ी उसूल अल-तफ़्सीर सफ़ा 3, सफ़ा 13 वग़ैरह)

(**7**)

अंग्रेज़ी ज़बान में एक ज़रब-उल-मसल (कहावत) है कि जिस जगह फ़रिश्ते चलने से गुरेज़ करते हैं वहां बेवक़ूफ़ कूद पड़ते हैं। पस जा-ए-हैरत नहीं कि जिस बात को सर सय्यद मरहूम जैसी ज़बरदस्त हस्ती ना निबाह सकी वहां मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादियानी जैसे ख़ामख़याल तहद्दी (लड़ाई करना, ललकारना) करने से ना झिजके। यह पुर लुत्फ़ क़िस्सा यूं है कि एक साहब **मौलवी इमाम उद्दीन** ने ये ख़्याल पेश किया था कि क़ुरआन बज़ात-ए-ख़ुद कामिल किताब नहीं है बल्कि मुजम्मल है और तफ़्सील व तशरीह और कामिल होने के लिए बाइबल शरीफ़ की मुहताज है क्योंकि बाइबल मुक़द्दस के बहुत से अहकाम ऐसे हैं जो इस में नहीं पाए जाते। इस पर आँजहानी मिर्ज़ाए क़ादियानी ने बतौर तहद्दी (चैलेन्ज) मौलवी साहब मरहूम को लिखा कि :-

> **“आपके लिए ये तरीक़ बेहतर है कि चंद पाक सदाक़तें किसी पहली किताब की जो आपके गुमान में क़ुरआन में नहीं पाई जातीं इस आजिज़ के सामने पेश करें फिर अगर ये आजिज़ क़ुरआन शरीफ़ से वो सदाक़तें दिखलाने में क़ासिर रहा तो आपका दाअवा ख़ुद साबित हो जाएगा।”**

इस के जवाब में मौलवी इमाम उद्दीन मरहूम ने सिर्फ तौरेत मुक़द्दस को सामने रखकर मर्ज़ाए क़ादियानी को लिखा :-

> “इमाम-उल-कुतुब-वन्नास तौरेत मुक़द्दस के हर पाँच हिसस में शराएअ मंज़िल मिनल्लाह बहुत सी ऐसी हैं जिनकी निस्बत यक़ीन-ए-कामिल रखता हूँ कि वो क़ुरआन अरबी में पाई नहीं जाती। अज़ाँजुम्ला चंद मसाइल शरइयह आपकी दरख़्वास्त पर जैल में लिखे जाते हैं :-
>
> (1) जो कोई शख़्स किसी ऐसी औरत के साथ वती (जिमाअ, सोहबत) करे कि जिसके साथ वती करनी किसी तरह से भी जायज़ नहीं हो सकती मसलन माँ, बहन वग़ैरह से तो ऐसे शख़्स की सज़ा क्या है?
>
> (2) जो शख़्स वती-फिल-दुबर (पुश्त, किसी चीज़ का पिछ्ला हिस्सा, मक़अद) करे या करवाए तो इस की सज़ा क्या है?
>
> (3) जो कोई मर्द किसी हैवान से वती (सोहबत) करे तो इस की सज़ा क्या है?
>
> (4) जो कोई औरत किसी हैवान से वती (सोहबत) करावे तो इस की सज़ा क्या है?
>
> (5) इन्सान के जिस्म के आज़ा में से ऐसे ऐसे आज़ा कौन कौन से हैं कि जिनको दूसरों की नज़रों से छुपाना चाहिए?

(6) पानी की मिक़दार ऐसी कौनसी है कि जिसमें अगर कोई नजिस शैय पड़ जाये तो भी पानी को पलीद ना समझा जाये?

(7) ज़रूफ़ गली या मिसी या चोबी वग़ैरह अगर नापाक हो जावें तो उनके पाक करने का तरीक़ा क्या है?

(8) चार पायों में से मसलन कुत्ता, बिल्ला और ऊंट, घोड़ा और परिंदों में से मसलन चील, कव्वा और कोनिज और बत और हशरात-उल-अर्ज़ में से मसलन चूहा और गाह और जानवरान आबी में से मसलन मगरमच्छ वग़ैरह हलाल हैं या हराम?

(9) ज़ब्ह करने का तरीक़ा क्या है? यानी किस तरह और किस जगह से किस क़द्र काटा जाये? और अगर तमाम काटा जाये तो उस के लिए क्या हुक्म है?

(10) हैज़ के दिनों की तादाद भी कुछ है या कि नहीं? ताकि मालूम हो कि औरत हैज़ से कितने दिनों के बाद पाक समझनी चाहिए?

(11) निफ़ास (वो ख़ून जो औरत को बच्चे की पैदाइश के बाद ज़्यादा से ज़्यादा चालीस (40) रोज़ तक टपकता रहे के अहकाम और इस के दिनों की तादाद कि जिनके बाद औरत नजासत से पाक हो सकती है क्या है?

(12) खतना करना चाहिए या नहीं? और अगर करना चाहिए तो कब और किस मौक़े से और किस तरह से किया जाये?

(13) जो कोई शख़्स ख़ियानत करे तो इस की सज़ा क्या है?

(14) ज़कात नक़द और मवेशी और ग़लात (गल्ले की जमा, अनाज) और अस्मार (समर की जमा, फल) की किस-किस वक़्त और किस-किस क़द्र अदा करनी चाहिए?

(15) कुंजरी के निकाह करने से जो बच्चा पैदा हो वो ख़ुदा पाक की जमाअत में दाख़िल हो सकता है या नहीं?

अब मतकज़ा-ए-हमीय्यत ये है कि मसाइल मुंदरजा सदर में से जो जो मसअला जिस जिस आयत क़ुरआन अरबी में मंसूस (क़ुरआन की वो आयात जो काबिल तावील ना हो) हो उस उस आयत नस (क़ुरआन मजीद की वो आयतें जो साफ़ और सरीह हों) को नक़्ल करके भेजें।"

(ख़त व किताबत बा मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी सफ़ा 23 ता 25)

जब मिर्ज़ा साहब को ये ख़त मिला तो बे-इख़्तियारन ज़बान-ए-हाल से फ़रमाया, जल तु जलाल तु, आई बला को टाल तु आपने अपने फ़रिश्ते टीची टीची से इल्हाम पाकर बीमारी का उज़्र करके बात टाल दी और 30 सितंबर 1889 ई॰ में मौलवी साहब को लिखा कि :-

"इंशा-अल्लाह मेरा इरादा है कि बराहीन अहमदिया के किसी महल पर आपका जवाब-उल-जवाब लिखूँ।"

मौलवी साहब मरहूम ने आठ (8) बरस इंतिज़ार करके 2 नवम्बर 1897 में फिर एक लंबा चौड़ा बीस (20) सफ़े का ख़त मिर्ज़ा जी को लिखा लेकिन

आँजहानी ने ऐसी चुप साध ली कि मर गए लेकिन ज़बान ना खोली। सच्च है, एक चुप हज़ार बला को टालती है।

कुछ ऐसे सोए हैं सोने वाले

कि हश्र तक जागना क़सम है

(8)

मुंदरजा बाला सुतूर में उलमा-ए-इस्लाम ने सिर्फ वो मसाइल पेश किए हैं जिन का ताल्लुक़ उमूर शरइयह के साथ है और जिनकी निस्बत वो ख़ुद तहदी (लड़ाई करना, ललकारना, चेलेंज) के साथ दावा करते हैं कि वो क़ुरआन में दर्ज नहीं हैं। चूँकि अहले इस्लाम का दिल और दिमाग़ ज़्यादा-तर शरीअत की सतह पर ही रहता है लिहाज़ा उन उलमा ने अपनी तहक़ीक़ को शरई उमूर तक ही महदूद रखा, लेकिन अगर वो शरीअत की सतह से बलंद परवाज़ी करके रूहानियत की जानिब मुतवज्जा हो कर मार्फ़त ईलाही के आला उसूल को क़ुरआन में तलाश करने की ज़हमत उठाते तो उन पर ये अज़हर मिन-श्शम्स (रोज़-ए-रौशन की तरह अयाँ) हो जाता कि सारे का सारा क़ुरआन आला उसूलों से सरासर ख़ाली पड़ा है। क़रीबन साठ (60) साल का अरसा हुआ। मरहूम पादरी जी॰ एल॰ ठाकुर दास साहब ने अपने रिसाले **"अदमे ज़रूरत-ए-क़ुरआन"** में मुफ़स्सिल तौर पर इस मज़्मून पर बहस करके उलमा-ए-

इस्लाम को चैलेंज दिया था कि क़ुरआन की वो आयात पेश करें जहां उन रुहानी उसूल का ज़िक्र हो, जो बाइबल शरीफ़ में मौजूद हैं। चूँकि इस बहस को तूल देना तहसील हासिल है। लिहाज़ा हम नाज़रीन को इस किताब की जानिब मुतवज्जा करने पर इक्तिफ़ा करते हैं। (ये किताब हमारी वेबसाइट पर मौजूद है)

(9)

हदीस क़ुरआन की कमी को पूरा नहीं कर सकती

जब से मौलवी मुहम्मद अली साहब एम॰ ए॰ ने क़ादियान की तारीक चार दीवारी से (जहां इल्म व अक़्ल का दम घुटता है) निकल कर लाहौर की इल्मी फ़िज़ा में सांस लेना शुरू किया है आपने अपने पीर "हज़रत अक़्दस मसीह मौऊद, महदी मौऊद हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी कृष्ण सानी" की बाअज़ बातों और फ़ासिद (तबाह, बर्बादी) अक़ीदों से अमलन तौबा कर ली है। सुतूर बाला में आँजहानी मिर्ज़ा साहब के अल्फ़ाज़ दर्ज किए गए हैं जो ये ज़ाहिर करते हैं कि आपके ख़्याल में क़ुरआन एक मुफ़स्सिल और कामिल किताब है जो ग़ैर-क़ुरआन की मुहताज नहीं। लेकिन मौलवी मुहम्मद अली साहब एम॰ ए॰ अपनी किताब **"मुक़ाम हदीस"** में दबी ज़बान से इक़रार

करते हैं कि क़ुरआन कामिल किताब नहीं (तीसरा बाब) और कि क़ुरआन ग़ैर-क़ुरआन का मुहताज है और कहते हैं :-

"कामिल मुकम्मल मुफ़स्सिल व मुशर्रेह काफ़ी वाफ़ी आफ़ी"

किताब क्या करती है कि जो अस्ल बातें तफ़्सील करने के क़ाबिल होती हैं उन्ही को छोड़ देती है? बइस्तसना-ए-अहले क़ुरआन तमाम उलमा-ए-इस्लाम भी इस बात के क़ाइल हैं कि क़ुरआन ग़ैर-क़ुरआन का मुहताज है चुनान्चे :-

> "हदीस मुआज़ वग़ैरह के मुताबिक़ अहले हदीस साहिबान भी तस्लीम करते हैं कि किसी फ़ैसला करने के लिए पहले क़ुरआन मजीद से हुक्म तलाश करने चाहिऐं। अगर क़ुरआन मजीद में ना मिलें तो हदीस के मुताबिक़ फ़ैसला करना चाहिए और अगर हदीस में भी इस के मुताल्लिक़ अहकाम ना हों तो इज्तिहाद राय (फ़िक़्ह इस्लामी की इस्तिलाह में क़ुरआन व हदीस और इज्मा पर क़ियास करके शरई मसाइल का अख़ज़ करना, ग़ौर व ख़ौज़ से किसी मसअले का हल करना) के उसूल पर अमल करना लाज़िम है।"

(बुरहान-उल-क़ुरआन सफ़ा 40) अल्लाहु अकबर

चह शुक्र हासत दरें शहर कि क़ानअ शूदा अंद

शाहबाज़ान तरीक़त बह शिकारे मगसे

چہ شکر ہاست دریں شہر کہ قانع شدہ اند
شاہبازان طریقت بہ شکارے مگسے

पस बइस्तसनाए चंद अफ़राद रुए ज़मीन के मुसलमान ये इक़बाल करते हैं कि क़ुरआन शरीफ़ ग़ैर-क़ुरआन का मुहताज है। अब सवाल ये पैदा होता है कि वो **"ग़ैर-क़ुरआन"** क्या शैय है? अहले इस्लाम कहते हैं वो हदीस है लेकिन साथ ही हदीसों के एक बड़े हिस्से को नाक़ाबिल एतबार क़रार देते हैं। अगरचे अहले इस्लाम ने निहायत एहतियात के साथ अहादीस की तन्क़ीद की है और उसूल तन्क़ीद। इल्म जरह (रावी को बे-एअतिबार साबित करना) और तअदील (उस को क़ाबिल-ए-एतिबार साबित करना) इल्म इस्म उर्रिजाल (اسم الرجال) (रुजल की जमा, बहुत से मर्द) वग़ैरह को तर्तीब देकर निहायत जाँ-फ़िशानी के साथ मेहनत-ए-शाक़ा (सख़्त मेहनत, दुशवार मेहनत) करके झूटी और सच्ची रिवायत और अहादीस में तमीज़ करने की कोशिश की है और सब इस बात पर मुत्तफ़िक़ हैं कि सहाह सत्ता (हदीस की छः मुस्तनद किताबें। बुख़ारी, मुस्लिम, तिर्मिज़ी, अबू दाऊद, इब्ने माजा, निसाई) के मजमूआ की अहादीस क़ाबिल-ए-एतिबार हैं बिल-ख़सूस इमाम बुख़ारी के मजमूआ अहादीस को क़ुरआन के बाद असह अलकितब (اصح الکتب) (दुरुस्त तरीन किताब) क़रार दे दिया है। लेकिन लुत्फ़ ये है कि जब ग़ैर-मुस्लिम सहाह सत्ता की कुतुब और इमाम बुख़ारी की सनद पर अहादीस का हवाला देकर इस्लाम पर और रसूल अरबी की ज़िंदगी पर कोई किताब लिखते हैं तो उनको **"शातिम रसूल"** (रसूल को गाली देने वाला) कह कर क़त्ल कर दिया जाता है। चुनान्चे मिर्ज़ा अहमद

सुल्तान साहब ने अपनी किताब "हफ़वात-उल-मुस्लिमीन" (तराहा बहिराम ख़ां गली मुफ़्तीयाँ, देहली) में इमाम बुख़ारी वग़ैरह की चंद अहादीस जमा की हैं। अपनी किताब के दीबाचे में आप लिखते हैं :-

> "अहले सुन्नत की कोई मज़हबी किताब ऐसी नहीं जिसमें ख़ुदा और अम्बिया और रसुल की तफ़ज़ीह (बेइज़्ज़ती) ना हो और सबसे ज़्यादा तफ़ज़ीह हुज़ूर अल-मुर्सलिन व तकबिह उमहात-ऊल-मोमनीन की कुतुब इस्लामी में है।..... थोड़े थोड़े रंगारंग के नमूने इस ग़रज़ से पेश किए जाते हैं कि हमारे ग़यूर मुसलमान इन रिवायत व अहादीस वाहीयह काज़िबह (बेहूदा और झूट) को कुतुब-ए-इस्लामी से ख़ारिज करें।"
>
> (हफ़वात-उल-मुस्लिमीन सफ़ा 2)

सच्च तो ये है कि ग़यूर मुसलमान तवीक जा रहे हर सलीम ज़ौक़ वाला इन्सान इमाम बुख़ारी वग़ैरहुम की बाअज़ अहादीस को पढ़ कर शर्म के मारे सर झुकाए बग़ैर नहीं रह सकता। ख़ुद राक़िम-उल-हरूफ़ को अपनी किताब **"मुहम्मद अरबी"** को तालीफ़ करते वक़्त इमाम बुख़ारी के मजमूआ को बग़ौर मुतालआ करने का नागवार इत्तिफ़ाक़ हुआ था।

पस कुतुब-ए-अहादीस ख़्वाह वो बुखारी की असह-उल-कतब (اصح الکتب) ही क्यों ना हो बमिस्दाक़ :-

और ख़ुद गुमराह सत करा रहबरी कुंद

اور خود گمراہ ست کرا رہبری کند۔

इस क़ाबिल नहीं कि उन पर ईमानियात के बारे में कुल्ली एतिमाद किया जा सके। इसी बिना पर अहले क़ुरआन और उनके हम-ख़याल अस्हाब ये गवारा नहीं करते कि क़ुरआन जैसी किताब को अहादीस का मुहताज गिरदाना जाये वो कहते हैं कि :-

> "ख़ुदा ने क़ुरआन की हिफ़ाज़त का ज़िम्मा लिया है और इस हिफ़ाज़त को क़ुरआन मजीद की सदाक़त की दलील बनाया गया है।..... अब अगर हदीसें भी इस ज़िम्मा में दाख़िल हैं या अगर क़ुरआन मजीद की तरह बहिफ़ाज़त तमाम हम तक नहीं पहुँचीं और जो पहुंची हैं उनमें रसूल-ए-ख़ुदा या सहाबा के वक़्त का कोई नविश्ता मौजूद नहीं जो अहले इस्लाम के हाथों में मुतदाविल रहा हो, बल्कि वो सब शहादत दर शहादत दर शहादत (कहाँ तक लिखा जाये) के तौर पर आई हैं और यूं वो ज़न्नी (गुमानी) हो गई हैं वो ग़रीब व ज़ईफ़ भी बन गई हैं बल्कि उनमें तर्ग़ीब व तरहिब के लिए झूट भी मिलाया गया है बल्कि मुख़्तलिफ़ फ़िर्क़ों ने अपनी अपनी अग़राज़ के लिए मुख़्तलिफ़ भी बना ली हैं और उनमें मौज़ूअ (झूठी, मनघड़त) हदीसें ही नहीं बल्कि मौज़ूअ (मनघड़त) आयात भी बनाकर शामिल की गई हैं तो इस से साफ़ खुल जाता है कि ख़ुदा तआला ने हदीस को अपनी हिफ़ाज़त से निकाल दिया है।" (बुरहान-उल-क़ुरआन सफ़ा 82-83)

(10)

हक़ीक़त तो ये है कि अहले इस्लाम ने अहादीस के जमा करने और उनसे सनद लेने में अहले यहूद की पैरवी की और उनकी देखा देखी ये कुतुब बनाइं। पस अहादीस और दीगर कुतुब फ़िक़्ह यहूदीयत की मरहून एहसान हैं। जो दर्जा अहले यहूद के नज़्दीक कुतुब तल्मूद का है वही दर्जा अहले इस्लाम के नज़्दीक कुतुब अहादीस का है। अहले इस्लाम ने अहले यहूद से रावियों का सिलसिला वग़ैरह क़ायम करना सीखा। चुनान्चे अहले यहूद में रावियों से यूं सनद ली जाती थी "रब्बी अलिफ़ ने कहा कि उसने रब्बी ब को यूं कहते सुना कि" वग़ैरह वग़ैरह। जिस तरह अहले यहूद अपनी कुतुब रिवायत को कलाम रब्बानी से मानते हैं इसी तरह अहले इस्लाम अपनी कुतुब अहादीस को वही ख़फ़ी (पोशीदा, बारीक) मानते हैं और ये अक़ीदा उन्होंने यहूदीयत से ही सीखा है कि अगर तुम दोनों मज़ाहिब की कुतुब रिवायत का मुक़ाबला करो तो तुम देखोगे दोनों की कुतुब रिवायत के उनवानात तक यकसाँ हैं। यहूदीयत में कुतुब फ़िक़्ह भी हैं जो "हलक़ा" (حلقہ) के नाम से मौसूम हैं। इस्लामी कुतुब फ़िक़्ह इन्ही कुतुब हलक़ा के साँचे में ढाली हुई हैं। और तुमको ब-सद मुश्किल फ़िक़्ह का कोई ऐसा मसअला मिलेगा जो यहूदी "हलक़ा" का मर्हूने मिन्नत ना हो।

(11)

क़ुरआन बाइबल का मुहताज है

मज़्कूर बाला बहस से दो बातें ज़ाहिर हैं, अव्वल ये कि क़ुरआन एक ग़ैर-मुकम्मल किताब है और ज़रूर ग़ैर-क़ुरआन की मुहताज है। और दोम ये कि अहादीस का मजमूआ इस क़ाबिल नहीं कि क़ुरआन के इस नुक़्स को रफ़ाअ कर सके।

अब सवाल ये पैदा होता है कि अहले इस्लाम के लिए इस मख़मसा (झगड़ा, बखेड़ा) में से निकलने की कोई राह है या नहीं?

जवाबन अर्ज़ है कि क़ुरआन ख़ुद अपने मुजम्मल और ग़ैर-मुकम्मल होने के नुक़्स को पूरा करने की राह बतलाता है और चूँकि मुसलमानों ने इस राह से ग़फ़लत इख़्तियार करली लिहाज़ा वो सही राह से कोसों दूर भटक गए। लेकिन हक़ीक़त यही है कि क़ुरआन मजीद ने ख़ुद अपनी कमी महसूस करके आप इस नुक़्स को दूर करने का उसूल भी क़ायम कर दिया। चुनान्चे मुलाहिज़ा हो :-

فَإِنْ كُنْتَ فِي شَكٍّ مِّمَّآ أَنْزَلْنَآ إِلَيْكَ فَسْئَلِ الَّذِيْنَ يَقْرَءُوْنَ الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكَ

“यानी (ऐ मुहम्मद) अगर तुझको उस चीज़ में जो हमने तेरी तरफ़ उतारी कुछ शक हो तो उन लोगों से पूछ लिया करो जो बाइबल[22] को तुझसे पहले पढ़ा करते हैं।” (यूनुस आयत 94)

फिर किताब मुक़द्दस के अम्बिया का तज़्किरा करके फ़रमाया :-

هَدَى اللّٰهُ فَبِهُدٰىهُمُ اقْتَدِهْ

“ये वो लोग हैं जिनको अल्लाह ने हिदायत बख़्शी। पस उन हिदायत की पैरवी कर।” (अनआम आयत 90)

चुनान्चे रसूल अरबी इस हुक्म पर अमल भी करते रहे :-

قُلْ فَأْتُوْا بِكِتٰبٍ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ هُوَ اَهْدٰى مِنْهُمَآ اَتَّبِعْهُ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ (۴۹)

“कह दो कि अगर सच्चे हो तो तुम ख़ुदा के पास से कोई किताब ले आओ जो इन दोनों (किताबों) से बढ़कर हिदायत करने वाली हो ताकि मैं भी उसी की पैरवी करूँ।” (सूरह क़िसस आयत 49)

फिर जो हुक्म अल्लाह ने आँहज़रत को दिया वही सब मुसलमानों को दिया और फ़रमाया :-

فَسْـَٔلُوْٓا اَهْلَ الذِّكْرِ اِنْ كُنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ (۴۳)

22 अरबी लफ्ज़ “अल-किताब” (الكتاب) यूनानी लफ्ज़ “बाइबल” का लफ्ज़ी तर्जुमा है।

“ऐ मुसलमानो अगर तुमको किसी शैय का इल्म ना हो तो बाइबल वालों से दर्याफ़्त कर लिया करो।” (सूरह अल-नहल 43)

मज़्कूर-बाला आयात से ज़ाहिर है, कि ख़ुद रसूल अरबी क़ुरआनी मुश्किलात को क़ुरआनी आयात से हल ना कर सके और आपको हुक्म हुआ कि जब इस क़िस्म की मुश्किल आ पड़े तो बाइबल मुक़द्दस की मदद लिया करो और आँहज़रत इस हुक्म पर चलते भी रहे। और मुसलमानों को भी यही हुक्म हुआ कि तुमको भी जब किसी मसअले की निस्बत इल्म ना हो तो बाइबल शरीफ़ की तरफ़ रुजूअ किया करो। लेकिन अहले इस्लाम के उलमा ने उनको इस सीधे रस्ते और ईलाही हुक्म और सुन्नत-ए-नब्वी से वरग़ला दिया और ईलाही हुक्म को बमिस्दाक़ وراءظهورهمه पसेपुश्त फेंक दिया और कहा कि तुम क़ुरआन का हल क़ुरआन में ढूंढ़ो या कह दिया कि तुम बाइबल की बजाय हदीस रसूल की जानिब रुजू किया करो। और ये भूल गए कि जब हज़रत ख़ुद क़ुरआनी मुश्किलात को क़ुरआन से हल ना कर सके तो माइ शुमा क्यूँ-कर कर सकेंगे और जब रसूल आप अपनी ज़िंदगी में ये मरहला पूरा ना कर सके तो अब हदीस रसूल किस तरह इस कठिन मंज़िल को तै कर सकेगी बिल-ख़सूस जब हदीस का हाल वो है जो ऊपर बयान हो चुका है।

अगर उलमा-ए-इस्लाम इस ईलाही हुक्म और सुन्नत नब्वी को मुहकम पकड़ लेते तो उन पर ये ज़ाहिर हो जाता कि तमाम मसाइल शरइयह जिनको

वो कुतुब अहादीस व कुतुब फ़िक़्ह में तलाश करने में हैरान व सर गर्दां (हैरान व परेशान) रहते हैं। तौरेत मुक़द्दस में मौजूद हैं। यही वजह है कि क़ुरआन ने तौरेत की निस्बत कहा :-

ثُمَّ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ تَمَامًا عَلَى الَّذِيْٓ اَحْسَنَ وَتَفْصِيْلًا لِّكُلِّ شَيْءٍ وَّهُدًى وَّرَحْمَةً لَّعَلَّهُمْ بِلِقَآءِ رَبِّهِمْ يُؤْمِنُوْنَ (۱۵۴)

“हमने मूसा को किताब दी जो नेकोकारों के लिए पूरा फ़ज़्ल है जिसमें हर एक बात के लिए तफ़्सील है। वो हिदायत और रहमत है।” (सूरह अनआम आयत 154)

उमूर शरइयह जो बत्तफ़सील तौरेत में मुंदरज हैं क़ुरआन के मुजम्मल अहकाम को पूरा करते हैं। इस के इलावा रूहानियत के तमाम उसूल जिनका ज़िक्र क़ुरआन में नहीं है कुतुब अम्बिया-ए-साबक़ीन में पाए जाते हैं। क्योंकि क़ुरआन का ये मंशा ही ना था कि अहले इस्लाम बाइबल शरीफ़ की तिलावत को तर्क कर दें और सिर्फ उसी को पढ़ें। बल्कि क़ुरआन का ये मंशा था और वाजिबात में से था कि जिस तरह मसीही इंजील जलील के साथ साथ अम्बिया-ए-साबक़ीन की कुतुब की तिलावत करते हैं उसी तरह मुसलमान ईमानदार भी क़ुरआन शरीफ़ के साथ साथ तौरेत मुक़द्दस कुतुब अम्बिया-ए-साबक़ीन और इंजील जलील की तिलावत जारी रखें। चुनान्चे क़ुरआन कहता है :-

تُؤْمِنُوْنَ بِالْكِتٰبِ كُلِّهٖ

“ऐ मुसलमानों तुम (वो हो जो) तमाम की तमाम बाइबल पर ईमान लाते हो।” (सूरह आले-इमरान आयत 119)

लेकिन अहकाम ईलाही की ज़िद में और मंशा-ए-क़ुरआनी और सुन्नत नब्वी के ख़िलाफ़ उलमाए इस्लाम कहते हैं :-

نُؤْمِنُ بِمَآ اُنْزِلَ عَلَيْنَا وَيَكْفُرُوْنَ بِمَا وَرَآءَهٗ

“हम सिर्फ क़ुरआन पर ईमान लाते हैं जो हम पर नाज़िल हुआ। और इस के इलावा जो नाज़िल हुआ उस को नहीं मानते हालाँकि वो हक़ है।” (सूरह बक़रह आयत 91)

ख़ुदा ऐसे ही ना फ़रमांबर्दार लोगों को मुख़ातब करके डराता और कहता है :-

اَفَتُؤْمِنُوْنَ بِبَعْضِ الْكِتٰبِ وَتَكْفُرُوْنَ بِبَعْضٍ ۚ فَمَا جَزَآءُ مَنْ يَّفْعَلُ ذٰلِكَ مِنْكُمْ اِلَّا خِزْيٌ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ يُرَدُّوْنَ اِلٰٓى اَشَدِّ الْعَذَابِ

“तुम जो ख़ुदा की किताबों के एक हिस्से को मानते हो और कुछ हिस्से का इन्कार करते हो जो शख़्स तुम में ऐसा करेगा उस का बदला सिवाए इस के क्या है कि इस दुनिया में उसकी रुस्वाई हो और क़ियामत में बड़े अज़ाब की तरफ़ लौटा या जाये।” (सूरह बक़रह आयत 85)

उलमा-ए-इस्लाम ने ईलाही हुक्म और ताज़ीब (दुख देना, अज़ाब करना) से रुगिरदानी करने के लिए ये हीला तराशा है कि बाइबल मुक़द्दस मुहर्रिफ़ (तहरीफ़ किया गया, बदला गया) हो गई है। इस के जवाब में हम क़ुरआनी आयत के अल्फ़ाज़ में ये कहते हैं कि :-

قُلْ بِئْسَمَا يَأْمُرُكُمْ بِهٖٓ اِيْمَانُكُمْ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ

“तू कह दे अगर तुम्हारा यही ईमान है और तुम ही ईमानदार हो तो तुम्हारा ईमान तुमको बुरा सिखाता है।” (सूरह बक़रह आयत 93)

हमने तहरीफ़ के मसअले पर एक मुस्तक़िल रिसाला **“सेहत कुतुब मुक़द्दसा”** लिखा है जिसमें हमने तफ़्सील के साथ ये साबित कर दिया है। कि ये मन घड़त इल्ज़ाम सरासर ग़लत बे-बुनियाद और ख़िलाफ़ वाक़िया है हमने बहुक्म :-

وَزِنُوْا بِالْقِسْطَاسِ الْمُسْتَقِيْمِ

“सीधी तराज़ू में तोलो।” (सूरह बनी-इस्राईल 27)

किताब मुक़द्दस और क़ुरआन शरीफ़ की सेहत का मुवाज़ना भी किया है। लिहाज़ा हम यहां इस बह्स में नहीं उलझते बल्कि नाज़रीन की तवज्जह इस किताब की जानिब मबज़ूल करने पर इक्तिफ़ा करते हैं और क़ुरआनी

अल्फ़ाज़ में मुसलमानों को बबान्ग दहल (अलाल एलान, खुल्लम खुल्ला) दावत देते हैं। या अहल-उल-इस्लाम :-

تَعَالَوْا إِلَىٰ كَلِمَةٍ سَوَاءٍ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ

"ऐ मुसलमानो ऐसी बात की तरफ़ आओ जो हमारे और तुम्हारे दर्मियान यकसाँ है।" (सूरह आले-इमरान आयत 64)

किताब मुक़द्दस ही सिर्फ एक शेय है जो यहूदीयों ईसाईयों और मुसलमानों में यकसाँ है।

وَإِنَّهُ لَفِي زُبُرِ الْأَوَّلِينَ (١٩٦)

"बेशक ये क़ुरआन अगले पैग़म्बरों की किताबों में मज़्कूर है।" (सूरह शूअरा आयत 196)

قُولُوا آمَنَّا بِالَّذِي أُنْزِلَ إِلَيْنَا وَأُنْزِلَ إِلَيْكُمْ وَإِلَٰهُنَا وَإِلَٰهُكُمْ وَاحِدٌ

"तुम कहो कि ऐ यहूद और ईसाईयों हम क़ुरआन पर भी ईमान लाते हैं जो हम पर उतरा और उन किताबों पर भी जो तुम पर उतरीं और हमारा ख़ुदा और तुम्हारा ख़ुदा एक ही ख़ुदा है।" (सूरह अन्कबूत आयत 46)

पस अहले इस्लाम को इसी आलमगीर किताब की तरफ़ दावत देते हैं ताकि वो ईलाही अहकाम क़ुरआनी आयात और सुन्नत नब्वी के मुवाफ़िक़ इस पर अमल करके नजात हासिल करें।

وما علینا الا البلاغ۔

من آنچہ شرطِ بلاغ است باتو میگوئم

تو خواہ از سخنم پند گیر خواہ ملال

ख़त्म शूदह